www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
रविवार, 29 सितम्बर 2013
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र
सप्ताह रविवार 29 सितम्बर, 2013 से 05 अक्टूबर 2013
आश्विन. कृ.–10 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 75, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

हंसराज पब्लिक स्कूल सैक्टर-6, पंचकूला नें मनाया विश्व साक्षरता दिवस

विश्व साक्षरता दिवस के पावन अवसर पर आर्य समाज, महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल, सैक्टर–6, पंचकूला की ओर से पर्यावरण की शुद्धि के लिए हवन यज्ञ का शुभारंभ सैक्टर–26, पंचकूला के पार्क में बड़ी धूम–धाम से किया गया। यह इस श्रंखला का पहला आयोजन था। प्रतिमास विभिन्न सैक्टरों में पर्यावरण की शुद्धि के लिए यज्ञ हवन करने के लिए आर्य समाज सैक्टर–6, पंचकूला कृत–संकल्प है। इस कार्यक्रम में स्थानीय आर्य समाज सैक्टर–11, सैक्टर–20, पंचकूला के सैंकड़ों आर्य नर–नारियों ने भाग लिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान डा. कृष्ण सिंह आर्य ,भूतपूर्व प्राचार्य डी.ए.वी. कॉलेज, सैक्टर 10, चण्डीगढ़ ने की। आर्य जी ने कहा कि यज्ञ प्राणी मात्र के लिए सुखदायी है। उन्होंने हवन के महत्त्व पर वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थों से उदाहरण लेकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला। उन्होंने बताया वैदिक यज्ञ दुनिया का सबसे उत्तम कर्म है।

अनाथ आश्रम सैक्टर–25 के बच्चों व आर्य युवा समाज सैक्टर–6 के बच्चों ने मधुर भजन प्रस्तत किये। इस सभा में लगभग 500 लोग उपस्थित थे। उपस्थित आर्यजनों और अभिभावकों ने कार्यक्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

अंत में आर्य समाज की प्रधाना जया भारद्वाज ने विभिन्न सैक्टरों से आए हुए आर्यजनों, उपस्थित अभिभावकगणों, बच्चों तथा सैक्टर वासियों का आयोजन को सफल बनाने के लिए हृदय से धन्यवाद किया। उन्होंने उपस्थित आर्यगण से भविष्य में भी सहयोग प्रदान करने का आग्रह किया।

डी.ए.वी.पुष्पाजंलि, दिल्ली, में शिक्षक दिवस पर हुआ यज्ञ

डी.ए.वी. पुष्पाजंलि, दिल्ली के प्रागंण में 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम सभी अध्यापक–अध्यापिकाओं के साथ प्रधानाचार्या श्रीमती रश्मिराज विस्वाल जी के नेतृत्व में यज्ञ सम्पन्न किया गया। यज्ञ में सभी ने श्रद्धा से वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए आहुति प्रदान की। यज्ञोपरांत प्रधानाचार्या ने अध्यापक–अध्यापिकाओं को सम्बोधित करते हुए कहा ''हमें गर्व है कि हम एक महान और गौरवशाली परम्परा की वाहक, डी.ए.वी संस्था से जुड़े हुए हैं। डी.ए.वी. संस्थाओं ने स्थापना के समय से ही सामाजिक चुनौतियों को स्वीकार करके समाज का मार्ग प्रशस्त किया है और आज जब हमारे समाज में जीवन मूल्यों पर प्रश्न लगा हुआ है तो हमें उन सभी चुनौतियों को सम्मुख रखके एक आदर्श शिक्षक की भूमिका निर्वाहित करते हुए अपने छात्र छात्राओं की सभी समस्याओं का निवारण करना है। उनके सम्पूर्ण विकास को सुनिश्चित करना होगा। छात्र–छात्राओं के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर ना समय की अनिवार्यता बताते हुए प्राचार्या ने विश्वास व्यक्त किया कि सभी अध्यापक अध्यापिकायें मिलकर ऐसा करने में सफल होंगे क्योंकि उनके सम्मुख स्वामी दयानन्द और महात्मा हंसराज जैसे आदर्श व्यक्तित्व जो हैं। सांस्कतिक कार्यक्रम के उपरान्त कार्यक्रम समाप्त हुआ।

बी.बी.के. डी.ए.वी. ने आर्य समाज लोहगढ़ अमृतसर में किया हवन-यज्ञ

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज अमृतसर की आर्य युवती सभा द्वारा आर्य समाज लोहगढ़ में वैदिक हवन यज्ञ का भव्य आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता श्री जे.पी. शूर डायरैक्टर, डी.ए.वी. पब्लिक एंड एडिड स्कूल एवं मंत्री, आर्य प्रादेशिक उपसभा, पंजाब ने की। बी. बी. के.डी.ए.वी. की प्राचार्या, स्टॉफ एवं छात्राओं ने कार्यक्रम में सहभागिता ली। प्राचार्या डॉ (श्रीमती) नीलम कामरा ने

आए हुए अतिथियों का स्वागत किया और यज्ञ समारोह में उपस्थित कॉलेज एवं होस्टल की छात्राओं को प्रोत्साहित करते हुए आशीर्वचन दिया तथा आर्य युवती सभा को इस भव्य आयोजन के लिए बधाई दी। श्रीमती कामरा ने बताया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा महाविद्यालय के महर्षि दयानन्द सरस्वती स्टडी सैंटर का बृहद् प्रौजैक्ट

शेष पृष्ठ 12 पर ☞

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 29 सितम्बर, 2013 से 05 अक्टूबर, 2013

अनुशासन ऐसे भी

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट्, स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्य, उत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम्।।

ऋग् १०.३२.७

ऋषिः **कवषः ऐलूषः**। देवता **विश्वेदेवाः**। छन्दः **भुरिक् पंक्तिः, व्यूहेन त्रिष्टुप् वा।**

● **(अक्षेत्रवित्)** अक्षेत्रज्ञ, **(क्षेत्रविदं)** क्षेत्रज्ञ से, **(हि)** ही, **(अप्राट्)** पूछता है।, **(क्षेत्रविदा)** क्षेत्रज्ञ से, **(अनुशिष्टः)** उपदेश किया हुआ, **(सः)** वह, **(प्र एति)** प्रकृष्ट दिशा में चल पड़ता है।, **(एतत्)** यह, **(वै)** ही, **(अनुशासनस्य)** अनुशासन का, **(भद्रम्)** श्रेष्ठ प्रकार [है]।, [इसी मार्ग से मनुष्य], **(अञ्जसीनाम्)** अर्थव्यंजिका वेदवाणियों के, **(स्रुतिम् उत)** मार्ग को भी, **(विन्दति)** प्राप्त कर लेता है।

● क्या तुम 'अनुशासन' का श्रेष्ठ प्रकार जानना चाहते हो? जो जिस क्षेत्र का विद्वान् होता है, वह उस क्षेत्र का 'क्षेत्रवित्' कहाता है, और जिसका उस क्षेत्र में प्रवेश नहीं होता, वह उस क्षेत्र की दृष्टि से 'अक्षेत्रवित्' है। उस क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करने के लिए अक्षेत्रवित् मनुष्य क्षेत्रवित् के पास जिज्ञासाभाव से पहुँचता है और उससे प्रश्न करता है। क्षेत्रवित् से अनुशिष्ट होकर वह ज्ञानी हो जाता है और उस ज्ञान को क्रिया रूप में भी परिणत करता हुआ प्रकृष्ट दिशा में चल पड़ता है। यही अनुशासन या उपदेश का श्रेष्ठ प्रकार है। इस अनुशासन–विधि का विश्लेषण करने पर शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम बात यह सामने आती है कि जिस विषय का ज्ञान प्राप्त करना हो, उस विषय के 'क्षेत्रवित्' या विशेषज्ञ के ही पास जाना चाहिए, अपरिपक्व ज्ञानवाले के पास नहीं। दूसरी बात है 'अक्षेत्रवित्' का स्वयं ज्ञान–प्राप्ति की इच्छा से समित्पाणि होकर गुरु के पास पहुँचना! अ–जिज्ञासु उपदेश का अधिकारी नहीं है। तीसरी बात है प्रश्नोत्तर के माध्यम से ज्ञान–प्रदान अर्थात् जिज्ञासु का प्रश्न करना और शिक्षक द्वारा पूछे गए प्रश्नों का समाधान किया जाना, न कि शिक्षक द्वारा बलात् शिष्य पर ज्ञान का थोपा जाना। चौथी बात है गृहीत ज्ञान को आचरण में भी लाना। यही अनुशासन, शिक्षण या उपदेश या सही वैदिक मार्ग है। इस मार्ग से अनुशासन होने पर विविध विद्याओं के गम्भीर–से–गम्भीर रहस्य जिज्ञासु से सम्मुख स्पष्ट हो जाते हैं। वेदवाणी के अन्दर जो वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य अर्थ छिपे हुए हैं और जिन जीवन–मार्गों का उपदेश वेद देते हैं, उन्हें आत्मसात् करने की भी यही विधि है।

अध्यात्म–दृष्टि से सर्वज्ञ परमात्मा क्षेत्रवित् है और अल्पज्ञ जीवात्मा अक्षेत्रवित्। परमात्मा के पास आत्मा के सब प्रश्नों का समाधान है। आश्यकता इसकी है कि आत्मा जिज्ञासु बनकर उससे पूछे। हे क्षेत्रवित् परमेश्वर! तुम गुरुओं के गुरु हो, हमारे भी गुरु बनो, तुम्हारा अनुशासन ही हमें सन्मार्ग पर चला सकता है।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

पिछले अंक में सांसारिक वस्तुओं के पीछे ना जा कर सत्य स्वरूप परमात्मा के दर्शनार्थ साधना की आवश्यकता पर बल देकर बताया कि लक्ष्य पर पहुंचने के लिए ठीक बात को समझना, समझने के बाद उसे प्राप्त करने का मार्ग ढूंढना और मार्ग खोज कर उस पर तप और साधना की भावना से चलने की बात कही। स्वामी जी ने कहा सांसारिक वस्तुओं को एकदम से छोड़ना नहीं। उनमें छिपी महाशक्ति को देखना है जो आनन्द का भण्डार हैं।

साधना करने का ढंग उसमें आने वाली बाधाओं पर भी विचार किया। ध्यान करने के लिए मन की वृत्तियों पर रोक लगाने का उपदेश किया और कहा कि त्याग भाव से प्रभु–प्रदत्त पदार्थों का भोग करो। स्वामी जी ने प्राण और अन्न को मिलाने को ही दर्शन बताया और अध्यात्मवाद और मायावाद को साथ–साथ चलाने की बात कही।

इसके बाद भी यदि जीवन रूपी घोर घने जंगल में मार्ग न मिले तो दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर प्रभु की शरण जाओ पूर्ण समर्पण के साथ।

अब आगे.....

और स्मरण रखो, जब इस प्रकार मनुष्य पुकारता है तब वह प्यारा प्रभु सुनता है अवश्य। तब मार्ग मिलता है अवश्य। लक्ष्य मिलता है अवश्य। कैसे मिलता है? इसके लिए पन्द्रहवाँ ब्राह्मण कहता है। चौदहवें ब्राह्मण से पूछो और चौदहवाँ ब्राह्मण कहता है–

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

इस गायत्री मन्त्र से वह लक्ष्य मिलता है। इसमें प्रभु की कृपा हो जाती है। परन्तु क्यों हो जाती है? चौदहवें ब्राह्मण ने इसका सुन्दर उत्तर दिया। 24 अक्षरों का यह गायत्री मन्त्र है। इसके तीन भाग हैं और उपनिषद् का ऋषि कहता है– जिस प्रकार गायत्री के प्रथम चरण में आठ अक्षर हैं, उसी प्रकार–**भूमिरन्तरिक्षं द्यौः।**

पृथिवी, आकाश और उससे परे का सारा विश्व–इन तीनों नामों में भी आठ अक्षर हैं। जो गायत्री के पहले भाग को जान लेता है, अपना लेता है, उसे सब–कुछ मिल जाता है। जो इन तीनों लोकों में है, इन तीनों लोकों में जितनी सम्पत्ति है वह सब–की–सब मिलकर भी गायत्री के इस के मूल के बराबर नहीं हो सकती।

तब यह कहता है, जिस प्रकार गायत्री के दूसरे भाग में आठ अक्षर हैं उसी प्रकार–**ऋचो यजूंषि सामानि।**

ऋग् यजुः साम–इन तीनों नामों में आठ अक्षर हैं। जो गायत्री के दूसरे चरण को जान लेता है, अपना लेता है उसे वह सब–कुछ मिल जाता है जो इन तीनों में मिलता है। इन तीनों लोकों में जितनी भी सम्पत्ति मिल सकती है, वह सब–की–सब मिलकर गायत्री के एक चरण के मूल्य के बराबर नहीं।

फिर वह कहता है कि जिस प्रकार गायत्री के तीसरे चरण मे आठ अक्षर है, इसी प्रकार–**प्राणोऽपानो व्यानः।**

प्राण, अपान और व्यान–इन तीनों नामों में भी आठ अक्षर हैं। जो व्यक्ति गायत्री के इस तीसरे भाग को जान लेता है, अपना लेता है, उसे वह सारा प्राणिजगत् मिल जाता है जो प्राण, अपान और व्यान से चलता है। इस जगत् में जितनी भी सम्पत्ति है, वह सब मिलकर भी गायत्री के इस चरण के, भाग के मूल्य के बराबर नहीं।

और अन्त में वह कहता है–इन तीनों चरणों के अतिरिक्त गायत्री का एक चौथा भाग भी है जो इन 24 अक्षरों से परे है। इस भाग को जो अपना लेता है यह सारा विश्व, ये सारे लोक, ये सारे ब्रह्माण्ड, ये बार–बार बनती और टूटती हुई सृष्टि, ये अरबों सूर्य, खरबों चाँद और यह सारा ज्ञान जो पहले था, जो आज है, जो भविष्यत् में कभी होगा और वह सब–का–सब प्राणिजगत्–मनुष्य, पशु–पक्षीकीड़े–मकोड़े, एक जितने स्थान में समाने वाले करोड़ों कीटाणु, ये फूल, ये फल, ये पत्ते, ये बीज, ये झूमते हुए वृक्ष, लहलहाते खेत, महकते हुए उद्यान, नाचती हुई घास, पहाड़ों की चोटियों और समुद्र की गहराई में उगे हुए पौधे, ये सब–के–सब उसके हो जाते हैं। इन सबका जो मूल्य है, इन सबमें जो सम्पत्ति है, जो शक्ति है वह मिलकर भी गायत्री के इस चौथे भाग के मूल्य का करोड़वाँ भाग भी नहीं है और गायत्री का यह चौथा भाग क्या है?

भुर्भवः स्वः– इसकी व्याख्या मैं पहले ..र चुका हूँ।

आप कहोगे, लो जी! यह तो बहुत सरल उपाय है। गायत्री मंत्र को ही सीख लिया, चार भाग हैं, इसके इन्हें सीखने में कितनी देर लगती है! बस, फिर हो गई सारे संसार की सम्पत्ति अपनी। इसके पश्चात् कुछ करने–कराने की आवश्यकता नहीं।

परन्तु देखो मेरे भाई! यह है गायत्री की महिमा। यह महिमा सच्ची है। परन्तु इसे प्राप्त करने के लिए केवल इतना ही नहीं है कि गायत्री मन्त्र को याद कर लो या तोते की भाँति उसका जाप करते रहो। ऐसा करने से कुछ होता नहीं। इस महिमा को प्राप्त करना हो, अपना बनाना हो तो इसके लिए परिश्रम की विधि यह है कि पहले मन्त्र को पढ़ो, फिर स्मरण करो, फिर इसके अर्थ को समझो, फिर न केवल इसका जाप करो अपितु इसके अनुसार अपना जीवन बना दो।

गायत्री के पहले ही भाग में एक शब्द आता है **'वरेण्यम्'**। बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द है यह। **वरेण्यं** का अर्थ है 'मैं तुम्हें वरता हूँ, अपना बनाता हूँ।' परन्तु जैसे ही मनुष्य इस शब्द को बोलता है और उसके अन्तिम भाग पर पहुँचता है तो उसके दोनों होंठ बन्द हो जाते हैं। क्यों बन्द हो जाते हैं? इसलिए कि जब उस परमात्मा को अपना बना लिया, अपनी बागडोर उसके हाथ में दे दी, जब अपने को उसके अर्पण कर दिया, तब और कहने के लिए रह क्या गया? इस शब्द के उच्चारण करते ही मनुष्य को अनुभव करना चाहिए कि उसने अपने–आपको गायत्री माँ को भेंट कर दिया है, अपने–आपको उसकी बलि चढ़ा दिया है। काली माँ के सामने जैसे बकरा चढ़ाते हैं, वैसे नहीं; अपितु अपने–आपको गायत्री माँ के सामने, सावित्री माँ के सामने इस प्रकार चढ़ा दिया है कि अपना कुछ रहा नहीं–

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ हैं सो तोर।
तेरा तुझको सौपते, क्या लागत हैं मोर।।

वेद में ऐसे व्यक्ति को **'दाशुषः'** कहा है। **दाशुषः** का अर्थ है अपने आपको अर्पण कर देने वाला, योग के लिए, क्षेम के लिए, प्रत्येक बात के लिए अपने–आपको प्रभु के भरोसे पर छोड़ देने वाला। ऐसे व्यक्ति के लिए परमात्मा कहता है–

अहं दाशुषे विभजामि भोजनम्।

'जिसने अपने–आपको मेरे अर्पण कर दिया है, जो मेरा हो गया है, जिसे मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे का आश्रय नहीं, मैं उसके पीछे–पीछे उसका भोजन लेकर दौड़ता–फिरता हूँ।'

अरे एक बार उस पर भरोसा करके तो देखो! फिर देखो कैसे–कैसे चमत्कार तुम्हें दिखाई देते हैं। एक बार सच्चे हृदय से कह तो सही– मैंने अपना–आप तुझे अर्पण कर दिया है, प्रभो! शरण पड़े की लाज तेरे हाथ है। तू जो भी करेगा वही मेरे लिए अच्छा है। एक बार इस संसार से हाथ धोकर देखो, जो कुछ रहा सहा है उसे खोकर देखो। क्या बताऊँ इसमें क्या आनन्द है! एक बार तुम किसी के होकर तो देखो!

परन्तु अर्पण करने से अर्थ हाथ–पर–हाथ रखकर बैठ जाना नही हैं। गायत्री मन्त्र निकम्मापन नहीं सिखाता, यह नहीं कहता कि–

राम भरोसे बैठकर, रहो खाट पर सोय।
अनहोनी होनी नहीं, होनी हो सो होय।।

नहीं, ऐसी बात न वेद सिखाता है न यह गायत्री मन्त्र सिखाता है। बृहदारण्यक उपनिषद् का ऋषि गायत्री के एक भाग का वर्णन करते हुए कहता है– "उसे जान! उसे अपना!"

उसे जानने और अपना बनाने का अर्थ क्या है? यह कि प्रत्येक भाग का अर्थ समझ। उसके अनुसार अपना जीवन बना दे, मन बना दे, बुद्धि बना दे; चित्त बना दे, शरीर भी बना दे, ऐसा करे तो फिर गायत्री की वह महिमा प्राप्त होगी अवश्य। फिर जीवन के इस घोर घने जंगल में कल्याण का मार्ग मिलेगा अवश्य, कल्याण होगा अवश्य।

क्यों मिलेगा? इसका उत्तर भी ऋषि देता है– गायत्री को गायत्री क्यों कहते हैं? इसका उत्तर देते हुए वह कहता है– यह 'गया' का त्राण करती है। उन्हें बचाती है। इसलिए इसका नाम गायत्री है। और क्यों जी! यह 'गया' क्या हुआ। एक 'गया' तो पटना से आगे बिहार में है जहाँ लोग श्राद्ध और पिण्डदान करते हैं। क्या उस 'गया' को बचाती है गायत्री? नहीं, 'गया' का अर्थ है प्राण– जीवन, जो लगातार गतिमान् है, सदा चलता रहता है उसे 'गया' कहते हैं। और इन प्राणों को देखो, क्या कोई ऐसा समय भी आता है जब ये चलते न हों? आप सो जाओ। गाढ़ निद्रा में खो जाओ, बेहोश हो जाओ, तो भी ये चलते रहते हैं। माँ के पेट में इनका प्रवाह आरंभ होता है और फिर चलता रहता है। एक दिन, एक मिनट, एक सैकण्ड के लिए भी रुकने का नाम नहीं लेता। योगी लोग जब स्थूल प्राण को रोककर समाधि में चले जाते हैं, तब भी यह सूक्ष्म प्राण चलता रहता है। उसी के सहारे योगी का जीवन स्थिर रहता है। जब इस शरीर का अन्त हो जाता है, जब जीवात्मा शरीर को छोड़कर ऊपर उठता है, तब भी यह सूक्ष्म प्राण उसके सूक्ष्म शरीर में उसके साथ–साथ जाता है– यह है वह चलने वाला जिससे अधिक और कोई नहीं चलता। वास्तविकता गतिमान यह है। सच्चा 'गया' यह है और गायत्री क्योंकि इसकी रक्षा करती है इसलिए उसको गायत्री–'गंगा' का त्राण करने वाली, प्राणों को बचाने वाली कहते हैं।

इसी बात को दयानन्द जी ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में कहा है–

"बहुत श्रद्धा के साथ 'गया' नाम के प्राणों में ध्यान लगाकर जो व्यक्ति परमेश्वर की उपासना करता है उसे जीवन और मरण से मुक्ति मिल जाती है क्योंकि प्राण में बल और शक्ति है, क्योंकि परमेश्वर प्राण का भी प्राण है और उसका प्रतिपादन करने वाला गायत्री मंत्र है जिसको 'गया' कहते हैं। उसको श्रद्धा के साथ, अर्थों को समझने के पश्चात् अपनाने और परमेश्वर की उपासना करने से जीवन सब दुःखों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

यह है महर्षि की बताई हुई गायत्री की महिमा। इससे पूर्व भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव ने गायत्री की महिमा का गायन किया है।

भगवान् शिव रहते थे कैलाश पर्वत पर। मैं वहाँ हो आया हूँ। दो चोटियाँ हैं; एक 22000 फ़ीट ऊँची, दूसरी 15000 फ़ीट। ऊपर वाली चोटी पर शिव महाराज रहते थे, निचली चोटी पर देवी पार्वती रहती थीं। दोनों के मध्य एक और चोटी है 19000 फ़ीट ऊँची। वहाँ कभी दोनों मिल लिया करते थे। मैं उस 19 हज़ार फ़ीट वाली चोटी पर पहुँचा। मेरा पथ–प्रदर्शक था कीचखम्बा। चढ़ाई बहुत कठिन है। कई स्थानों पर मृत्यु से बचकर हम वहाँ पहुँचे। मैं थक गया था बहुत। बैठने लगा तो कीचखम्बा ने कहा, "बैठो नहीं।" मैंने कहा, "अरे भाई!" यहाँ शिव जी महाराज और देवी पार्वती जी बैठकर बातें करते थे। आ, मैं और तू भी बैठ जायें। तू शिव जी बन जा, मैं पार्वती बनता हूँ। आ, दोनों बैठकर बातें करें।" उसने कहा, "नहीं स्वामी जी! यह स्थान है 19000 फ़ीट ऊँचा। यहाँ बैठ गए तो रक्त जम जायेगा। खड़े–खड़े ही बातें करो, बैठो नहीं।"

उस चोटी पर एक बार शिव और पार्वती आपस में बातें कर रहे थे तो पार्वती ने पूछा, "महाराज! आपको योग की इतनी सिद्धियाँ प्राप्त हैं। संसार आपको योगेश्वर कहता है। मुझे बताइये कि आपने ये सिद्धियाँ कैसे प्राप्त कीं?"

शिव जी महाराज बोले, "पार्वती! ये कैसे प्रश्न पूछती है? छोड़ इन बातों को, दूसरी बात कर।"

पार्वती ने कहा, "नहीं महाराज! आप बतायेंगे नहीं तो मैं नीचे नहीं जाऊँगी, यही बैठी रहूँगी।"

शिव–पार्वती का यह सम्वाद एक पुस्तक 'गायत्री–मंजरी' में विद्यमान हैं। पहले यह छपी नहीं थी। अब मथुरा से छप गई है। पार्वती ने जब बहुत आग्रह किया तो शिव जी बोले–

गायत्री वेदमातास्ति साऽद्या शक्तिर्मता भुवि।
जगज्जननी तामेव उपासेऽहमेव इह।।

'मैंने जिसके द्वारा वेद की उपासना की, वह वेदकी माता, आदि–शक्ति, संसार के अन्दर सारे जगत् को, सम्पूर्ण लोकों को उत्पन्न करने वाली गायत्री है, उसी के द्वारा मैंने उपासना की।

यौगिकानां समस्तानां साधकानां तु हे प्रिये।
गायत्री माता वै लोके मूलाधारा विलाम्बरी।।

'संसार के सभी योगी लोग, सभी साधक इसी लोकमाता गायत्री का सहारा लेकर बढ़ते हैं।' यह है गायत्री की महिमा!

तो भाई मेरे! इस कलियुग में और कुछ नहीं कर सकते तो गायत्री का सहारा ही लो और फिर देखो कि संसार के इस घोर घने जंगल में कितना सुन्दर मार्ग मिलता है, कितना कल्याण करने वाला, कितना शान्ति देने वाला, कितना आनन्द देने वाला!

मायावाद और अध्यात्मवाद दोनों को साथ लेकर, दोनों को मिलाकर आगे बढ़ो। सोने के इस ढकने से, प्रकृति के इन चमकते हुए पदार्थों से घृणा न करो। इसके अन्दर जाकर देखो। वास्तविकता को समझो, अपने अन्दर देखो। वहाँ बैठा है तुम्हारा प्रीतम। अपने मन में प्यार पैदा करो, श्रद्धा और विश्वास पैदा करो। इस अभिमान को छोड़ दो कि मैं ही सब–कुछ हूँ, बाहर के रूप ही सब–कुछ हैं। अपने–आपको उसके अर्पण कर दो, कहो–प्रभो! ओ मेरे प्रीतम! मैं जन्म–जन्म की प्यास लेकर तुम्हारे दर पर आया हूँ। संसार के इस घोर घने जंगल में जहाँ माया के पुष्प खिले हैं, जहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकाररूपी पशु घूम रहे हैं, साँप फुङ्कार रहे हैं; इस जंगल में घूमते–घूमते, चलते–चलते, दौड़ते–दौड़ते चकनाचूर हो गया हूँ। अब कृपा कर दो। मैं कुछ नहीं प्रभो, तू ही सब–कुछ है। दर्शन दे दो, ज्योति दिखा दो अपनी!

और फिर–

दिया अपनी खुदी को जो हमने मिटा,
वह जो पर्दा–सा बीच में था न रहा।
रहा पर्दे में अब न वो पर्दानशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।।

और सुनो! वह मिलता है अवश्य, यह कहीं गया नहीं। हर समय, हर स्थान पर विद्यमान है, स्वयं तुम्हारे हृदय में बैठा है–

न दरवेशों का ख़िरका चाहिये ना ताज शाहाना।
मुझे तो होश दे इतना रहूँ मैं तुझ पे दीवाना।।
न देखा वो कहीं जलवा जो देखा खानए–दिल में।
बहुत मस्जिद में सिर मारा बहुत–सा ढूँढा बुतखाना।।

वह हृदय–मन्दिर में है, आत्मा के साथ। आत्मा के अन्दर बैठा है–

तिलेषु तैलं दध्नीव सर्पिरापः स्रोतस्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।।

'तिल में जैसे तेल है, दही में मक्खन, झरने में जैसे पानी है और मकड़ी में आग, इसी प्रकार वह आत्मा के बैठा है, परन्तु मिलता है सत्य से, विश्वास से, तप से।'

और कौन है वह जिसका कोई पति नहीं, जिसका कोई शरीर नहीं, जिसकी कोई मूर्ति नहीं, जो प्रत्येक कारण का कारण है, जिसका कोई पिता नहीं,

शेष पृष्ठ 5 पर ☞

सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय ही क्यों?

● राज कुकरेजा

अद्भुत प्रतिभा के धनी मुनिवर गुरुदत्त ने महर्षि दयानन्द जी की अमर कृति सत्यार्थ प्रकाश के विषय में लिखा है "मैंने सत्यार्थ प्रकाश को अठ्ठारह बार पढ़ा और जितनी बार पढ़ा है उतनी ही बार यह अनुभव हुआ कि मैं नया ग्रन्थ पढ़ रहा हूँ, हर बार ग्रन्थ का नया रूप सामने आता रहा और मैं उस रहा में खो जाता। सत्यार्थ – सिन्धु में अवगाहन करता रहा, गोते लगाता रहा और अनेक मूल्यवान और आभावान रत्न चुनता रहा। जो भी व्यक्ति इस ग्रन्थ का अवगाहन करेगा उसे अमूल्य मणि–मुक्ता उपलब्ध होंगे। यह ग्रन्थ इतना मूल्यवान है कि मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पति को इसके सामने तुच्छ समझता हूँ।"

डॉ. राम प्रकाश जी 'सत्यार्थ विमर्श' के प्रारम्भ में ही लिखते हैं कि "सत्यार्थ प्रकाश कालजयी ग्रन्थ है। यह ऋषि दयानन्द जी की मान्यताओं और सरोकारों का प्रतिनिधि है। इस ग्रन्थ ने नव जागरण को नेतृत्व दिया है। यह ग्रन्थ भारत की बौद्धिक सम्पदा का सारभूत है, यह वेदादि की अंतर्ध्वनि का घोष है, यह धर्म का सम्बल है, कार्य का भी सम्बल है पर धर्म के नाम पर धंधा चमकाने वालों के लिए यह वज्र है।"

सत्यार्थ प्रकाश ऋषि दयानन्द सरस्वती जी की मानव जाति को एक अनुपम भेंट है। सत्य इसका सम्बन्ध केवल आर्य–समाज के साथ नहीं है अपितु मनुष्य मात्र से है। ऋषि उद्देश्य तो केवल सत्य अर्थों का प्रकाश करना है। उनके अनुसार सत्य का प्रकाश करने वाला तो ईश्वर है जो इस हेतु सृष्टि के आरम्भ में वेद का ज्ञान दिया करता है। समय के साथ सत्य के अर्थों पर आवरण पड़ गए हैं। वे तो केवल उस आवरण को हटा रहे हैं। इसलिए नाम रखा सत्यार्थप्रकाश। यह ईश्वर एवं वेद के प्रति उनकी गहन आस्था की अभिव्यक्ति है, साथ ही विभिन्न विषयों पर उनके चिंतन का सार है। इसीलिए तो इसे सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक ग्रन्थ कहा गया है।

स्वामी दीक्षानन्द जी सत्यार्थप्रकाश को कल्पतरु तो श्री यशपाल आर्य बन्धु इसे सत्यार्थ–दिग्दर्शन मानते हैं। जिसने भी सत्यार्थ सिन्धु में गोता लगाया वे ही ज्ञान रूपी रत्नों को पा कर धन्य हो उठा। सच ही तो कहा है कि **'जिन खोजा तिन पाईया'**। इन ऋषिभक्तों के ये वचन मेरी भी प्रेरणा के स्रोत बने। मेरे अंदर भी इस सत्यार्थ सिन्धु में गोते लगाने की तीव्र इच्छा हुई और मैंने पढ़ने का प्रयास किया परन्तु आरम्भ में मेरे पल्ले कुछ न पड़ते देख निराशा व उदासीनता भी हो जाती परन्तु सत्यार्थप्रकाश का आकर्षण तो बना ही रहता। एक बार सत्यार्थप्रकाश की भूमिका को जब समझने का प्रयास कर रही थी तो ऋषि दयानन्द जी ने जो गीता का श्लोक **'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्'** और इस का जो अभिप्राय समझाया कि जो–जो विद्या है और अत्यंत पुरुषार्थ साध्य है इस को पढ़ो मत, इस का स्वाध्याय करो। प्रथम कठिन है तो क्या हुआ बाद में इसमें रस ही रस है। मेरी भी बुद्धि में यह बात बैठ गई कि पढ़े तो किस्से–कहानी, उपन्यास और सस्ते साहित्य जाते हैं। स्वाध्याय तो आर्ष ग्रन्थों का किया जाता है अर्थात् इसे अपने हृदय की गहराई तक उतारा जाता है। बस फिर क्या था प्रथम समुल्लास जिसमें ईश्वर का मुख्य नाम ओ३म् और अन्य गौण नाम ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव के अनुरूप हैं, जिन्हें समझने में काफी प्रयास से भी नहीं समझ पाती थी अब थोड़ी–थोड़ी समझ में आने लगे। इससे पूर्व मुझे धातु, प्रत्यय और उपसर्ग ही नहीं आते थे कारण कि अपने अध्ययन काल में मैंने हिंदी को गौण विषय लिया हुआ था, जिसका अब खेद भी होता है। सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय काल में जो मैं समझ न पाती उसे रेखांकित करती और जब भी कभी अवसर मिलता विद्वानों से स्पष्टीकरण कर लेती। मैं स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक जी (रोजड़) की अत्यंत आभारी हूँ जिन्होंने बड़े धैर्यपूर्वक मेरी शंकाओं का समाधान किया और अब भी ई–मेल द्वारा करते रहते हैं। परोपकारिणी सभा ने विद्वानों के प्रवचन, दर्शन व उपनिषदों को वेब साईट पर अप लोड करके हम जैसे सामान्य लोगों पर अति उपकार का कार्य किया है। इनके प्रवचन वैदिक सिद्धांतों पर ही होते हैं। इन से सत्यार्थ प्रकाश को समझना सरल व सुगम हो जाता है। परोपकारिणी सभा के इस उपकार को कभी भी नहीं भुलाया जा सकता है। विशेषतः श्री धर्मवीर जी के आध्यात्मिक प्रवचन, आचार्य सत्यजित जी का केन उपनिषद् और स्वामी विस्वङ् जी का योग दर्शन जिसका उन्होंने स्काईप के माध्यम से अध्यापन कराया है। इनकी भी सदा आभारी रहूँगी।

ऋषि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में लिखते हैं कि वैद्य और औषध की आवश्यकता रोगी के लिए है। आर्य समाजों की कम होती उपस्थिति का यह अर्थ नहीं लिया जा सकता कि अब लोग रोगी नहीं हैं, अपितु अब वहाँ वैद्य ही नहीं हैं। अधिकांश अधिकारीगण, संरक्षक, मंत्री और प्रधान न तो ऋषि दयानन्द जी को समझ सके हैं, न ही उनके सिद्धान्तों, मंतव्यों को और न ही सत्यार्थ प्रकाश को जानते, समझते हैं। जिन दो चार ने सत्यार्थ प्रकाश को यदि पढ़ भी लिया है तो व्यवहार में नहीं ला पाते हैं। सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय न करने से कितनी हानि हो रही है उसे ये लोग नहीं समझ पा रहे हैं। हमारे ही कई बहन–भाई दूसरे मत–मतान्तरों में जा रहे हैं। कई जो स्वयं को आर्य–समाजी समझते हैं और सोचते हैं कि वे आर्य समाज का प्रचार रहे हैं परन्तु स्वयं पाखण्ड, अंधविश्वासों, फलित ज्योतिष में, ग्रहों के प्रभाव में फसे हुए हैं। अपने बच्चों की जन्मपत्री बनवा रहे हैं और उन के विवाह गुण–कर्म–स्वभाव अनुरूप न करवा कर जन्म–पत्री के गुणों को मिलवा रहे हैं। अब तो अधिकांश मंगलीक ग्रह के चक्कर में भी फँसे हुए हैं। इन्हीं लोगों को ऋषि रोगी मानते हैं। ऋषि जी रोगी और निरोगी की परिभाषा समझाते हुए एकादश समुल्लास में लिखते हैं कि विद्यावान नीरोग और विद्या रहित अविद्या रोग से ग्रसित रहता है। उस रोग को छुड़ाने के लिए औषध सत्य विद्या और सत्योपदेश ही होता है। ऋषि को न समझ, जो स्वार्थ बुद्धि के हैं, वे केवल अपनी स्वार्थ पूर्ति करने के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं जानते हैं। दूसरी ओर विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेक विध दुःखों की वृद्धि और सुख की हानि हो रही है। ये स्वार्थी विद्वान भी देश काल के अनुकूल अपने पक्ष की सिद्धि के लिए अपनी आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध भी कर रहे हैं।

अन्य मत–मतान्तर के लोग अपनी संकीर्ण व संकुचित बुद्धि के कारण आर्य समाजी उसे मानते हैं जो मूर्ति पूजा नहीं करता, हवन करता है। बड़ी विडम्बना है कि अब अधिकांश आर्य समाजी भी हवन कर लेने मात्र से आर्य समाजी बने हुए हैं। आजकल महिलाओं में हवन किट्टी का बहुत प्रचलन है। वहाँ भी कार्यक्रम हवन और भजनों तक ही सीमित हैं। वहाँ भी सत्यार्थ प्रकाश को न समझने का परिणाम है कि छोटी–छोटी बातों में अपशगुन मानने लगी हैं और हर समय अनिष्ट की आशंका से भयभीत भी रहती हैं। ऋषि सप्तम समुल्लास में लिखते हैं कि भय उसे होता है जो विपरीत बुद्धि रखता है। अर्थात् जो ईश्वर से डरता है वह और किसी से नहीं डरता। ऋषि के आशय को न समझ कर हम टोने–टोटकों में उलझ जाते हैं। आज कल लोग जब घर बनवाते हैं तो देखा–देखी उस पर नजर पट्टू लगा लेते हैं और संतुष्ट हो जाते हैं कि अब उनके नवनिर्मित घर पर किसी की बुरी नजर नहीं लगेगी। देखने में तो ये बहुत छोटी–छोटी बातें लगती हैं परन्तु परिणाम अत्यंत भयंकर होता है। ये छोटी सी दिखने वाली बातें ही व्यक्ति को मानसिक रूप से इतना निर्बल बना देती हैं कि धूर्त लोग ऐसे लोगों को अपने चंगुल में फँसा लेते हैं। आजकल समाचार पत्र ऐसे ही समाचारों से भरे मिलते हैं। महिलाएँ इन धूर्तों के बहकावे में फस कर इन्हें स्वेच्छा से अपने आभूषण तक उतार कर दे आती हैं। ऋषि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखते हैं कि शैशव काल से ही माता–पिता ऐसी शिक्षा करें कि बालक इन धूर्तों की बातों में न फँसे। सत्यासत्य की परीक्षा पाँच प्रकार से करनी होती है ताकि सत्य को ग्रहण करने की और असत्य के त्याग करने की समझ आ सके। इसलिए ऋषि जी तृतीय समुल्लास में लिखते हैं कि बच्चों को बचपन में ही सुसंस्कार मिलने चाहिएँ।

आजकल हम देखते हैं कि लोगों की भीड़ दूसरे मत–मतान्तरों की ओर है। इस सबका यह अभिप्राय नहीं है कि दूसरे मत–मतान्तरों की ओर जो भीड़ बढ़ रही है, वहाँ वे लोग नीरोग अर्थात् उन्हें वहाँ सत्यविद्या और सत्य उपदेश की उपलब्धि हो रही है। वहाँ तो भेड़चाल चल रही है। स्वामी जी के अनुसार **अंधे के पीछे अंधे चलें तो क्यों न दुःख पावें**। इन लोगों के न तो सिद्धांत हैं और न ही ये शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना की बात करते हैं। इनके बारे में तो सत्य ही कहा है कि **'स्वार्थी दोषं न पश्यति'** ये स्वार्थी लोग अपने काम सिद्धि करने में दुष्ट कामों को श्रेष्ठ मान दोष को नहीं देखते। यद्यपि मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने हारा है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए हठ, दुराग्रह, अविद्या आदि दोषों की उपेक्षा कर रहे हैं ऋषि का यह कथन कितना सत्य है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तब मिला जब एक देवी के मन्दिर में एक सज्जन ने पुजारी से देवी के दर्शन के लिए अनुनय

शेष पृष्ठ 6 पर ☞

स्वाधीनता आन्दोलन में महर्षि दयानन्द का योगदान

● डॉ. यतीन्द्र कुमार

19वीं सदी भारतीय इतिहास में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। क्योंकि सदी में दासता व अज्ञानता से त्रस्त भारत में नवजागरण संदेश लेकर भारत माता के रत्न गर्भ से एक महापुरुष शृंखला प्रसूति हुई। जिसमें महर्षि दयानन्द का स्थान सर्वोपरि है।

महर्षि दयानन्द का नाम आते ही उनके समकालीन भारत की दशा स्वतः जीवन्त हो उठती है। सदियों से पराधीनता के पाश में बँधा भारतीय जनमानस अज्ञानता व दासता के तमस को भेदकर विश्व के बदलते परिदृश्य के साथ खुले आकाश में साँस लेने को आतुर था। लेकिन ब्रिटिश क्रूर शासन, रूढ़िवाद, संकीर्णता तथा कुरीतियों से ग्रस्त भारतीयों के लिए यह असंभव ही था। ऐसे कंटकाकीर्ण कलिकाल में भारतीय मानस पटल पर महर्षि दयानन्द का अवतरण निश्चय ही भारतीय इतिहास की महान स्वर्णिम् घटना है, जो वेदोद्धारक, समाज–सुधारक, स्वराज्य उद्घोषक तथा प्रचण्ड स्वाभिमानी प्रतीक के रूप में स्थापित होती है।

महर्षि दयानन्द का भारतीय धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में अप्रितम योगदान है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आधुनिक भारत में नव निर्माण की नींव का आधार महर्षि दयानन्द का महान व्यक्तित्व व विराट् कृतित्व है। जब हम भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का गहन अध्ययन करते हैं तो उसके मूल में महर्षि दयानन्द का महान योगदान परिलक्षित होता है।

महर्षि दयानन्द का 1856 से लेकर 1860 ई. तक का जीवन चरित् विद्वानों के लिए मौन ही रहा है। स्वराज्य का डिण्डिम घोष करने वाले प्रखर संन्यासी महर्षि दयानन्द भारत की पराधीनता से गहन व्यथित थे। निश्चय ही उनके जीवन काल का एक अंश सक्रिय स्वातन्त्र्य चेतना के रूप में रहा। साहित्य लेखन व सार्वजनिक भाषणों में उनके द्वारा स्वभाषा, स्वराज्य, स्वदेश व स्वधर्म की भावना रह–रह कर मुखरित होती रही। अतः इस वास्तविकता को कदापि नकारा नहीं जा सकता कि महर्षि दयानन्द 1857 ई. के स्वतन्त्रता समर में न सिर्फ सक्रिय थे बल्कि एक मौन साधक के रूप में उसके महान पुरोधाओं में से थे। वीर विनायक सावरकर की पुस्तक *'1857 का स्वातन्त्र्य समर'* के अनुसार इस क्रान्ति को फैलाने में सभी मतों के साधुओं का सक्रिय योगदान था। यह टिप्पणी स्वामी जी के योगदान की पुष्टि करता है। स्वामी सच्चिदानन्द योगी द्वारा लिखित *'महर्षि दयानन्द चरित्र'* में 1857 ई. की उनके क्रान्ति में योगदान को तार्किकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। बाल गंगाधर तिलक महर्षि दयानन्द को स्वतन्त्र्य क्रान्ति के संदेश वाहक के रूप में स्वीकार करते हैं। डा. सत्यकेतु विद्यालंकार *'आर्य समाज का इतिहास'* के चौथे खण्ड में लिखते हैं– हम इस बात की प्रबल संभावना पर विचार कर चुके हैं कि सन् 1857 ई. की स्वतन्त्र्य क्रान्ति में महर्षि दयानन्द व उनके गुरु विरजानन्द दण्डी का सक्रिय योगदान था। बल्कि ये क्रान्ति का विस्फोट करने वाले पुरोधाओं में से थे। डा. सत्यकेतु आगे लिखते हैं कि महर्षि दयानन्द उन व्यक्तियों में से थे जो 1857 ई. की क्रान्ति से निराश नहीं हुए, बल्कि संग्राम की विफलता पर विचार कर उन्हें दूर करने व उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयत्न जारी रखने वालों में से थे।

महर्षि दयानन्द समकालीन भारत की दुर्दशा से सर्वथा दुःखी थे। अस्मितामयी भारत भूमि पर वैदेशिक दमनकारी शासन उनका हृदय विदीर्ण था। स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में भारतीयों के गौरवशाली अतीत की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं 'जो आर्यावर्त से भिन्न देश हैं, वह दस्यु तथा म्लेच्छ कहलाते हैं।' स्वामी जी आगामी पंक्तियों में स्वराज्य की भावना को उग्रता से स्फुटित करते हुए लिखते हैं 'अब अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य प्रमाद व परस्पर विरोध से अन्य देशों में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है जो कुछ है वह विदेशियों से पदाक्रान्त हो रहा है।' ग्यारहवें समुल्लास में स्वामी जी पुनः गौरवशाली अतीत की ओर इंगित करते हैं – यह निश्चय है जितने मत, विद्या, भूगोल में फैले हैं, वह सब आर्यावर्त देश से ही प्रचारित हुए हैं – यह आर्यावर्त देश ऐसा है, जिसके सदृश दुनिया में दूसरा देश नहीं है।

इसी सन्दर्भ में स्वामी जी संस्कृत वाक्य प्रबोध नामक पुस्तक में पशु–पक्षियों के उदाहरण देकर स्वराज्य के स्वाभिमान को जागृत करते हैं और लिखते हैं कि यह तो पशु–पक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उनका घर छीन लेता है तो वे भी यथाशक्ति प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं।

जनवरी सन् 1873 ई. में महर्षि दयानन्द व लार्ड नार्थ ब्रुक के मध्य कलकत्ता शहर में भेटवार्ता का आयोजन रखा गया। वार्ता में लार्ड नार्थ ब्रुक ने स्वामी जी से निवेदन किया कि वे भारत में ब्रिटिश शासन का समर्थन व सहयोग करें। प्रत्युत्तर में स्वामी जी ने नार्थ ब्रुक को ललकारते हुए कहा कि मेरे देशवासियों को अबोध राजनैतिक उन्नति तथा संसार के अन्य राज्यों के समान दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। नार्थ ब्रुक ने यहीं पर अपनी वार्ता स्थगित कर दी तथा लन्दन स्थित कार्यालय को रिपोर्ट दी– इस विद्रोही फकीर पर कड़ी दृष्टि रखने की आवश्यकता है।

महर्षि दयानन्द देशी रियासतों की आपसी कलह, राजाओं की निरंकुशता व भोग विलासिता से खासे रुष्ट थे। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने आपसी कलह के दुष्परिणाम एवं अंग्रेज़ों की 'फूट डालो' शासन करो नीति का भण्डा फोड़ करते हुए लिखा' .... जब भाई–भाई आपस में लड़ते हैं, तब तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। स्वराज्य के उत्कृष्ट अभिलाषी, स्वाभिमानी महर्षि दयानन्द ने देशी रिसायतों में जा–जाकर राजाओं के स्वाभिमान को ललकारा तथा उन्हें उनके कर्तव्य से परिचित कराया।

महर्षि दयानन्द स्वदेशी, स्वराज्य व स्वभाषा के सर्व प्रथम प्रचारक व समर्थक थे। स्वदेशी शब्द का प्रयोग वह बड़े व्यापक रूप में करते थे। इसमें वह अपनी भाषा व संस्कृति को समाहित करते हुए इसे अपनाने पर बल देते थे। 1905–06 ई. में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ होने से तीस वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर बल दिया। जब कांग्रेस नेता ब्रिटिश शासन को ईश्वरीय वरदान व दैवीय व्यवस्था समझ रहे थे, उस समय महर्षि दयानन्द स्वराज्य व स्वदेशी की महिमा का प्रचार–प्रसार कर रहे थे। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार लिखते हैं– 'महर्षि दयानन्द नमक कानून का विरोध करने वाले सम्भवतः पहले नेता थे। उन्होंने 1875 ई. में प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश में नमक कर ही कड़ी आलोचना की'। इसी संदर्भ में विख्यात इतिहासकार डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार भी स्वाधीनता आन्दोलन में महर्षि दयानन्द की भूमिका के बारे में लिखते हैं– 'महर्षि दयानन्द का एक प्रधान उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता था। वस्तुतः वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया तथा जनता का आह्वान किया कि वह भारत में बनी स्वदेशी वस्तुओं का ही इस्तेमाल करें।

समाज सुधारक, धर्मोद्धारक, स्वराज्य व नवचेतना के प्रतीक महर्षि दयानन्द के विचारों एवं सिद्धांतों ने न केवल भारतवासियों को ही अपितु विदेशी विचारकों एवं विद्वानों को भी पूर्ण प्रभावित किया। नोबेल पुरस्कार विजेता रोमां रोल्या *'द लाइफ ऑफ रामकृष्ण'* में लिखते हैं– 'महर्षि दयानन्द भारतीय जनता के उद्धारक एवं राष्ट्रीय चेतना आन्दोलन के शक्ति पुंज थे।

यूरोप में जो कार्य बेकन, दस्कार्ते, स्जिनोजा, बाल्तेयर आदि विचारकों ने किया, उससे कहीं ज्यादा भारत में महर्षि दयानन्द द्वारा किया गया है।

विद्यालंकार सदनम्
मौ. महादेव, धनौरा 244231
जनपद – अमरोहा।
(मो. 09412634672)

☞ *पृष्ठ 3 का शेष*

घोर घने जंगल में

जिसका कोई स्वामी नहीं–

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

'जो सदा रहने वाले हैं उनमें वह सबसे अधिक सदा रहने वाला है। जो होशवाले हैं उनमें वह सबसे अधिक होशवाला है, जीवनवाला है। वह सबका कारण है। सांख्य और योग, दोनों से उनको जानकर यह आत्मा सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।'

और कैसा है वह? बहुत प्रकाशमान्, बहुत मीठी ज्योति की भाँति। परन्तु वह प्रकाश ऐसा तो नहीं मेरे भाई, जैसा हम इस संसार में देखते हैं। ये चाँद, ये सूर्य और तारे, यह धू–धू करके जलती हुई अग्नि, नहीं, इनमें से उसके बराबर कोई नहीं–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

'उसके समक्ष सूर्य, चाँद, तारे और बिजलियाँ तुच्छ हैं, अग्नि व्यर्थ है, उसकी चमक से सबको चमक मिलती है। उसके प्रकाश से सारा संसार प्रकाशित है।

यह है तुम्हारा लक्ष्य, तुम्हारा जन्म–जन्म का साथी। तुम ही उसकी तलाश में नहीं, वह भी तुम्हारी प्रतीक्षा में है। आगे बढ़ो! संसार के इस घोर घने जंगल में भटकने वाले मानव! हिम्मत न हार, तुझे प्रकाश मिलेगा अवश्य, ज्योति मिलेगी अवश्य!

ओ३म् शम्

शेष अगले अंक में....

www.thearyasamaj.org

श्रीकृष्ण की राजनीति और वर्तमान उग्रवाद

● डॉ. अशोक आर्य

योगीराज कृष्ण के जन्म से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व ही इस देश की अधोगति आरम्भ हो गई थी। योगीराज ने अपनी नीति के प्रयोग से इस अधोपतन को समाप्त करने का भरपूर प्रयास किया। यह उनकी राजनीति का ही परिणाम था कि जो भारत देश महाभारत काल में ही विदेशियों का गुलाम होने की अवस्था में था वह देश चार हजार वर्ष बाद में गुलाम हुआ। श्री कृष्ण जी के पश्चात् भी हमारे जिस राजनेता ने भी उनकी नीति का अनुसरण किया, इतिहास में उसने स्थाई स्थान पाया।

भारतीय इतिहास में महाभारत के पश्चात् हम चाणक्य को प्रथम राजनेता के रूप में पाते है, जिसने कृष्ण जी के आदर्श राज नियमों को अपनाया तथा चन्द्रगुप्त को आगे रखकर भारत की सीमाओं को मजबूत किया। फिर शिवाजी महाराज ने उसी नीति को अपनाते हुए दक्षिण भारत तथा बन्दा वैरागी, हरिसिंह नलवा, महाराज रणजीत सिंह आदि ने उत्तर भारत में इसी राजनीति का अवलम्बन किया। इसी का परिणाम था कि ये महापुरुष अपने सभी प्रकार के अभियानों में सदा सफल हुए। भारत स्वाधीन हुआ। उस समय देश अति विकट अवस्था में था। इस अवस्था में देश पुनः बँट कर नष्ट हो जाता यदि कृष्ण नीति को अपनाकर सरकार पटेल देसी रियासतों की लगाम न कसते।

इस प्रकार के कृष्ण को यदि महर्षि दयानन्द ने अपने शब्दों में इस प्रकार कहा कि "कृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त कोई पाप नही किया" तो कोई अति शयोक्ति नहीं की। महाभारत का वह काल था, जिस में ब्राह्मण अपनी मर्यादाओं को भूल रहे थे। जन्म को जाति का आधार बनाने लगे थे। तभी तो एकलव्य व कर्ण को समान शिक्षा देने में बाधा खड़ी की गई। यह वह समय था, जब क्षत्रियों की मर्यादा समाप्त हो रही थी। तभी तो श्री कृष्ण ने वैदिक मर्यादाओं को स्थापित करने का प्रयास किया। देश कौरव व पाण्डव दो दलों में बंटा था। राष्ट्रीय भावना के लोग पाण्डवों के साथ थे तथा विदेशी शक्तियाँ कौरवों के साथ थीं। तभी तो योगीराज ने पाण्डवों का पक्ष लेकर न केवल देश को सुरक्षित ही किया अपितु खण्डित देश को एक केन्द्रीय संगठन भी दिया। इस संगठन की कमान युधिष्ठिर को दी।

श्री कृष्ण जी की राजनीतिक सूझ इसी से प्रकट होती है कि वह राजनीति में दया के स्थान पर जैसे को तैसा के मार्ग पर चलने वाले थे। यही कारण था कि जब कौरव सेना ने लड़ाई के सभी नियमों का उल्लंघन करते हुए बालक वीर अभिमन्यु का वध कर दिया तो कृष्ण ने उसके साथ वैसा ही व्यवहार करने का निर्देश देकर कुछ भी तो गलत नहीं किया। इसी नीति के माध्यम से ही तो कर्ण, भीष्म पितामह, अश्वथामा, कालयवन आदि यहाँ तक कि अन्त में दुर्योधन को भी मार कर या पराजित कर अपनी अद्भुत राजनीति का परिचय दिया। यह ठीक भी है। राजनीति में पराजय का नाम मृत्यु है तथा जय का नाम है स्वर्गिक आनन्द। जीतना ही धर्म है और हारना अधर्म। यही कारण है कि जब सन्धि का संदेश लेकर श्री कृष्ण कौरव दरबार में गए तो पहले से ही ऐसी तैयारी कर गए थे कि उनके साथ छल न होने पाए। स्वयं तो कौरव दरबार में खड़े थे किन्तु उनके रक्षकों ने पूरे क्षेत्र को घेर रखा था। जब कृष्ण जी के ओजस्वी विचारों से कौरव दल के सभी लोग उनके पक्ष में आ गए तो दुर्योधन ने उन्हें हिरासत में लेने की सोची किन्तु दूरदर्शी कृष्ण जी की पहले से ही हुई तैयारी यहाँ काम आई। धूर्त दुर्योधन उनका बाल भी बाँका न कर सका।

यह कृष्ण जी की नीतियों का ही परिणाम था कि यह देश, जो उस समय विदेशियों की गुलामी झेलने की अवस्था में पहुँच चुका था, को आपने सुदृढ़ कर न केवल गुलाम होने से बचाया अपितु इसके लगभग चार हजार वर्ष बाद भी यह देश बचा ही रहा। आज जिस प्रकार हमारा भारत देशी विदेशी उग्रवाद की चपेट में फँसा है ठीक इसी प्रकार मर्यादा पुरुषोतम राम के शासन से पूर्व तथा युधिष्ठिर के शासन से पूर्व भी उग्रवाद व विदेशी लोगों के कोप से ग्रसित था। राम व कृष्ण दो ऐसे महान नेता व राजनीतिज्ञ इस देश को प्राप्त हुए जिन की सफल राजनीति ने उस समय के विदेशी उग्रवाद को समूल नष्ट कर देश में एक ठोस व मजबूत केन्द्रीय सत्ता स्थापित कर इस देश को ऐसी सुदृढ़ पृष्ठभूमि दी कि फिर हजारों वर्षों तक उग्रवाद यहाँ अपना फन न उठा सका। आज ठीक वैसी ही अवस्था से देश निकल रहा है। प्रतिदिन यहाँ न केवल विदेशियों की घुड़किया मिल रहीं है बल्कि प्रतिदिन उग्रवादियों द्वारा किए जा रहे बम धमाकों, गोलियों आदि के कारण हजारों भारतीय मारे जा रहे हैं। हमारे राजनेता अपनी दलगत राजनीति में इतने उलझे हुए है, कि देश के इस महान् संकट के समय भी एक होकर लड़ने के स्थान पर एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में देश का अवनति की ओर जाना निश्चित है। इसी का परिणाम है कि कहीं अतिवृष्टि हो रही है और कहीं अनावृष्टि, कहीं तो किसी के गोदाम भरे हुए है तो किसी को दो जून का भोजन भी नहीं मिल रहा। सभी स्वार्थ के वशीभूत हो रहे हैं।

आज इस विदेशी प्रायोजित आतंकवाद पर काबू पाकर देश को ठोस आधार देने की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव होगा जब हमारे राजनेता श्री कृष्ण जी की राजनीति को न केवल समझेंगे अपितु इसे व्यवहार में लाएँगे। यही एकमात्र हल है इस उग्रवाद के मुँह से देश को निकाल कर पुनः परम वैभव पर लाने का। आर्य समाज एक मात्र संस्था है जो यह मार्ग वर्तमान स्वार्थी राजनेताओं को दिखा सकती है। अतः आर्य समाजियों को मजबूती से इस राजनीति को अपनाना चाहिए।

104 शिप्रा अपार्टमेंण्ट, कोशाम्बी 201010
गाजियाबाद (भारत)
चलभाष 09354845426
ईमेल ashokarya1944@rediff.com

☞ पृष्ठ 4 का शेष

सत्यार्थ प्रकाश का ही....

विनय की तो पुजारी के मुख से सत्य ही निकला कि वह वहाँ चालीस सालों से बैठा है तो दर्शन नहीं कर सका, उसे कैसे करवा सकता है? इसलिए ऋषि लिखते हैं कि सबकी आत्मा सत्यासत्य को जानने वाली होती है परन्तु जिन झूठे सिद्धांतों से प्रसिद्धि स्थापित की होती है उसे ये स्वार्थी लोग बनाए रखना चाहते हैं।

बौद्धिक, तार्किक तथा वैज्ञानिक चिंतन करने वालों के लिए सत्यार्थ प्रकाश उपयोगी एवं ज्ञान वर्धक सिद्ध होता है। स्वाध्याय करने से मनुष्य में सत्य का ज्ञान होता है और ज्ञान–विज्ञान मे रुचि भी उत्पन्न होती है। अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि भी सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय से हो सकती है। देश में अशांति, अनीति और अराजकता का बोलबाला है। देश की राजनीति निम्न स्तर की अर्थात् निकृष्ट हो चुकी है तो आर्य समाज भी अछूता नहीं है। पूरा देश ही रोगी है। ऋषि दयानन्द जी के अनुसार वैद्य में तीन गुण होने चाहिएँ। प्रथम रोगीदेश कौन सा है? दूसरा रोग क्या है? तीसरा रोग की औषध क्या है? यह तो सर्व विदित हो गया कि रोग से छुड़ाने के लिए हमारे कुछ विद्वान प्रयत्नशील हो रहे हैं। अजमेर में आचार्य सत्यजित् जी व उनके सहयोगी आचार्यों ने अधिक से अधिक लोगों तक सत्यार्थ प्रकाश पहुँचाने का दृढ़ संकल्प लिया है तो दूसरी ओर आचार्य संदीप जी सोनीपत आर्य समाज में सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा रहे हैं और परीक्षा भी ले रहे हैं ताकि लोग सत्यार्थ प्रकाश का मनन करें और इसे अपने जीवन में, अपने व्यवहार में उतारें और अन्यों का तन, मन व धन से सहयोग करें।

अंत में परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है – धियो यो नः प्रचोदयात्

हे सविता देव! आप हमारी बुद्धियों को सत्यार्थ के स्वाध्याय की ओर प्रेरित करें।

करनाल 786/8 अर्बन एस्टेट, 132100 1
हरियाणा, मो 0 09416801757
ईमेल : raj.kukreja.om@gmail.com

डी. ए. वी. पब्लिक स्कूल, ईस्ट आफ लोनी रोड , दिल्ली -13

आवश्यकता है एक धर्म शिक्षक की। संस्कृत में स्नातकोत्तर उपाधि अथवा समकक्ष एवं वैदिक दर्शन का ज्ञान अनिवार्य। वेतन नियमानुसार। पूर्ण विवरण के साथ उपरोक्त पते पर आवेदन करें। आवेदन फार्म स्कूल कार्यालय में उपलब्ध है। आवेदन ई. मेल द्वारा davps_lr@rediffmail-com पर भी कर सकते हैं।

प्रिंसिपल

हम कहाँ जा रहे हैं

● डॉ. सहदेव वर्मा

वेद मंत्र का एक भाग है– **"जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृवि"** – अर्थात् जागरूक नेता ही जनता (देश) की रक्षा कर सकता है। वास्तव में विवेक शील, सचेत नेता ही देश की नौका का खेवनहार है। राष्ट्र को संकटों से उबार कर सुरक्षित दिशा देना सतर्क नेता का केवल काम ही नहीं, अपितु कर्तव्य भी है। पर आज तो सब विपरीत सा दिखाई दे रहा है। कभी नाव जर्जर दिखाई देती है, तो कभी नाविक के हाथ पैर लड़खड़ाने लगते हैं। नाव पर बैठे यात्रियों का विश्वास भी डगमगाने लगता है। स्थिति कुछ इस प्रकार की दिखाई देने लगती है:–

अन्धेरी रात तूफ़ाने तलातुम नाखुदा गाफिल
ये आलम है अगर–कश्ती सरे मौजे खाँ कब तक?"

आखिर यह स्थिति क्यों आभासित होती है। यदि आर्य समाज की आधुनिक मानसिकता का विश्लेषण करें तो बात कुछ स्पष्ट हो सकेगी। सुधी पाठक इस तथ्य से अवगत हैं कि बीसवीं शताब्दी के तीसरे चौथे दशक तक आर्य समाज का रुतबा इसलिए प्रशंसनीय था क्योंकि तब आर्यसमाजी ऋषि दयानन्द के केवल अनुयायी ही नहीं बल्कि अनुगामी भी थे। उनकी कथनी और करनी में भेद नहीं था।

उस समय का तथा आज का अन्तर समझने के लिये कुछ अधिक विचार करने की आवश्यकता है। एक समय था जब आर्य समाज के लिए क्रान्तिकारी संस्था का विशेषण लगता था। हमें इस भ्रम का निराकरण करना होगा कि क्रान्ति का अर्थ केवल तोड़–फोड़, हिंसा या मारकाट है। क्रान्ति का अर्थ विचारों में आमूल चूल परिवर्तन है। आज हम क्रान्तिकारी से (मात्र) सुधारवादी हो गये। हम सिद्धान्तवादी से समझौता वादी हो गये। हम व्यावहारिक से (मात्र) आदर्शवादी हो गये।

क्रान्ति और सुधार में अन्तर होता है। सुधारवादी दो कदम आगे बढ़ता है तो एक कदम पीछे हट जाता है। परन्तु क्रान्ति में गुणात्मक परिर्वन होता है। क्रान्ति के परिवर्तन का अर्थ है– 2×4×8। किसी समय आर्य समाज की यही स्थिति थी। उन्नीसवीं शताब्दी तक अनेक महापुरुष सिद्धांत तो प्रस्तुत करते थे, किन्तु आवश्यकता हो तो उन्हें समझौता करने में भी कोई गुरेज नहीं था। दोनों की गद्दी सुरक्षित रहनी चाहिए। ऋषि दयानन्द के सामने भी एक बार यह स्थिति आई थी जब उन्होंने ब्रह्मसमाज की ओर हाथ बढ़ाया था किन्तु तब ऋषि ने सिद्धान्त को ही महत्त्व दिया समझौते को नहीं।

एक समय था जब आर्य समाज ठोस यथार्थवाद अर्थात् जीवन की व्यावहारिकता पर, वस्तुस्थिति पर ज़ोर देता था। केवल आदर्श की आँधी में उड़ना उसने नहीं सीखा था। म. गांधी से इस बिन्दु पर एक बार नहीं कई बार टकराव भी हुआ किन्तु आर्य समाज मौका परस्ती की "चाहिए" के चक्कर में न फँस कर यथा–योग्य बर्ताव का ही प्रबल समर्थक रहा। फिर आर्य समाज उन्नति की दौड़ में पिछड़ क्यों गया? क्योंकि.....

भले बुरे के फर्क ने बस्ती उजाड़ दी।
मजबूर होके है किसी से मिलने लगे हैं हम।।

हम जिन बुराईयों को दूर करना चाहते थे, वे बराबर बढ़ती जा रही हैं। आर्य समाज भी बढ़ा अवश्य, परन्तु भ्रष्टाचार, बेईमानी और पाखण्ड उससे भी तेज़ी से बढ़े। आर्य समाज ने हर दिशा और दृष्टि से कुरीतियों पर चोट की। जिस समय समाज में – **मद्यं मासं च मीनं च मुद्रामैथुनमेव च।**
एते पंच मकारास्तु मोक्षदा हि युग युगे।।
का बोलबाला था उस समय आर्य समाज का नारा और कार्यक्रम इन बुराइयों पर गहराई से चोट करना था– पर आज कौन सा नगर, गली और मौहल्ला है जहाँ इनका प्रचार और व्यवहार न हो?

आर्य समाज ने कुछ ऐसे कार्यक्रमों का बीड़ा उठाया था, जिनके प्रचार से मानव समाज को एक नया प्रकाश और प्रेरणा मिली। जिनमें मुख्य थे– शिक्षा, शास्त्रार्थ और शुद्धि। शिक्षा तो किसी न किसी रूप में आज भी आर्य समाज के पास है परन्तु उसका भी व्यवसायीकरण हो गया है। राजा और रंक, अमीर और गरीब, धनी, और निर्धन आज एक ही आसन पर बैठ शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। आधुनिक सरकारों ने "आरक्षण" का एक नया शोशा छोड़कर इस भेद भाव की खाई को और गहरा तथा चौड़ा कर दिया है। जहाँ तक शास्त्रार्थ और शुद्धि का प्रश्न है ये शब्द तो नई पीढ़ी के लिए शब्द कोष की वस्तु होकर रह गए हैं। पर इसके लिये उत्तरदायी कौन है?

ऊपर हमने अनुगामी तथा अनुयायी शब्दों का प्रयोग किया है। आज हम ऋषि के अनुगामी न होकर मात्र अनुयायी रह गए हैं। यद्यपि शब्द कोश की दृष्टि से दोनों शब्द समानार्थक हैं। परन्तु वैचारिक दृष्टि से दोनों में अन्तर है। अनुगामी वह है जो गृहीत सिद्धान्तों, मर्यादाओं और नियमों को जीवन में ढाल लेता है। अनुयायी वह है जो भीड़ में शामिल होकर जय जयकार कर अपनी स्थिति दर्ज कराता है। अनुगामी कुछ ही होते हैं, पर अनुयायी असंख्य।

महर्षि के अनुगामी थे गुरुदत्त, लेखराम, श्रद्धानन्द, हंसराज आदि। स्वाध्याय में लगे तो जर्मनी फ्रांस और इग्लैण्ड के विद्वान हिल गए। प्रचार में लगे तो विधर्मियों के विश्वास डोल गए और निरुत्तर होने पर छुरे को हथियार बनाया। शुद्धि में लगे तो चोटी और ज़नेऊ की माँग बढ़ी। शिक्षा में लगे तो डी.ए.वी. कॉलिज कन्या पाठशाला और गुरुकुलों के जाल बिछा दिए। राजनीति में गए तो लाठी, गोली खाकर फाँसी के फन्दों पर झूल गए और विदेशी सरकार की चूलें ढीली कर दीं।

कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के उद्घाटन के अवसर पर गाँधी जी ने मालवीय जी को सम्बोधित करते हुए कहा था, "मालवीय जी आप गंगा के किनारे बैठकर भारतीय छात्रों को टेम्स नदी का पानी पिलाना चाहते हैं, यदि आपका उद्देश्य प्राचीन भारतीय संस्कृति का उद्धार करना है तो हरिद्वार में जाकर देखिए जहाँ महात्मा मुंशीराम जी बीहड़ जंगलों में बैठकर उसी पुण्य पावन कार्य में लगे हैं।"

भारी भ्रम:– कुछ अधकचरे लोगों ने ईर्ष्यावश स्वामी श्रद्धानन्द को मुसलमानों का विरोधी करार दिया है। परन्तु उन आँख के अन्धों और बुद्धिहीन बन्दों ने कभी यह सोचने की ज़हमत नहीं उठाई कि "श्रद्धानन्द, केवल श्रद्धानन्द" ही, ऐसे सर्वमान्य नेता हुए जिन्होंने जामा मस्जिद के मिम्बर (वेदी) पर खड़े होकर वेद मंत्र का उच्चारण कर एकता का संदेश दिया था।

"जामा मस्जिद के मिम्बर पर खड़ा हुआ संन्यासी।
मक्का और मदीना के संग जैसे मथुरा काशी।।
हिन्दू–मुस्लिम इस भारत की हैं दो आँखें प्यारी।
शीघ्र देश आजाद बने यह कर लो अब तैयारी।।"

इन्हीं स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान पर म. गाँधी ने ये उद्गार प्रकट किए थे:– "दुनियां में ऐसे तो बहुत से लोग हुए हैं, जिनका जीवन तो साधारण था किन्तु मृत्यु शहीदों जैसी थी। ऐसे भी अनेक लोग हुए हैं जिनका जीवन तो शहीदों जैसा था लेकिन मृत्यु साधारण लोगों जैसी थी। परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द का तो जीवन भी शहीदों जैसा था और मृत्यु भी शहीदों ही की थी, भला ऐसे महापुरुष को कौन श्रद्धांजलि अर्पित न करना चाहेगा।"

धर्मवीर पं. लेखराम तो धर्म प्रचार के सिवाय कुछ अन्य सोचते ही न थे। प्रचार की धुन ऐसी कि अभी बाहर से घर आए ही थे, एक मात्र बेटा सख्त बीमार था – भोजन करने बैठे ही थे कि तभी एक पत्र आया उसे खोलकर पढ़ने लगे–

"लिफ़ाफ़ा हाथ में लाकर दिया जिस वक्त माता ने,
लगे झट खोल कर पढ़ने, दिया था छोड़ खाने को।
लिखा था उसमें कुछ हिन्दु मुस्लमां होने वाले हैं,
जो आ सकते हो तो जल्दी चले आओ बचाने को।।"

फिर क्या था, धर्म के उस दीवाने ने खाना छोड़ दिया। बिस्तर तो बँधा हुआ था ही, फौरन चल दिया। माता ने कहा– "खाना तो खाओ। बेटा सख्त बीमार है कम से कम उसे देख तो लो।" धर्मवीर ने कहा माता यहाँ मेरा एक बेटा बीमार है– पर मेरे कई बेटे मुसीबत में हैं पहले उनकी सुध तो ले लूँ। श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने इस घटना का कुछ संकेत किया है।

महात्मा हंसराज जी का जीवन तो खुली किताब है। जिसका जी चाहे कोई सा पन्ना खोलकर देख लें पढ़ लें। उनके जीवन का तो हर पृष्ठ पारदर्शी है। जैसा भीतर वैसा बाहर। सन् 1960 के लगभग की घटना है निश्चित तिथि ध्यान नहीं। पूना में सनातन धर्म की ओर से एक "अश्वमेध यज्ञ" की घोषणा की गई, जिसमें अश्व को काटकर (वध करके) आहुति देने की योजना थी। जब यह समाचार आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री को मिला जो आर्य समाज के सर्वमान्य विद्वान नेता थे। तो वे वहाँ पहुँच गए और खुले तौर पर घोषणा की कि 'अश्वमेध' का अर्थ घोड़े की आहुति यज्ञ में देना है, यदि आप लोग (विपक्षी विद्वान पण्डितों से तात्पर्य) किसी भी ऋषि प्रणीत प्राचीन ग्रन्थ या वेद के आधार पर यह सिद्ध कर दें तो मैं तो इस निर्णय को मान ही लूँगा, आर्य समाज भी इस मान्यता को स्वीकार कर लेगा। (यह समाचार उ.प्र. आर्य प्र.नि. सभा के तत्कालीन प्रमुख पत्र "आर्यमित्र" में प्रकाशित हुआ था।) अन्ततः यज्ञ के आयोजकों ने अपना यह इरादा बदल दिया।

विद्वान पाठक गण अनुमान लगाइयें कि कैसी कठिन भीषण प्रतिज्ञा थी। मैं उस समय आर्य समाज सदर मेरठ का मंत्री था। मैंने उन्हें समाज में उत्सव पर आमंत्रित किया और इस घटना का उल्लेख करते हुए उनसे नम्रता पूर्वक निवेदन किया। पं. जी आपने इतनी गम्भीर और महत्त्वपूर्ण चुनौती दे डाली,

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

जीवन का उद्धार आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने से ही सम्भव है।

● आचार्य भगवान देव वेदालंकार

मानव-जीवन की यह सत्यता है कि जीवन का उद्धार तब तक नहीं होगा, जब तक हमें आत्मा-परमात्मा का यथार्थ ज्ञान न होगा। हमें ज्ञान प्राप्त करना है, साक्षात्कार करना है उस शक्ति का जो शरीर को या जीवन को चलाती है। जीवन को चलाने वाली शक्ति का नाम है आत्मा और परमात्मा। शरीर से अधिक कीमती चेतन आत्मा है। उसकी किसी को चिन्ता नहीं हैं। इससे बढ़कर और अज्ञान क्या होगा कि जो शरीर साधन है, उसे लोग साध्य समझ बैठे है। इसी कारण प्रातः से लेकर सायंकाल तक शरीर के ही भरण-पोषण के लिये ही भागदौड़ हो रही है। इसी को खिलाने, पिलाने, दिखाने और सजाने में पूरी शक्ति लगाई जा रही है। आत्मा-परमात्मा का बोध नहीं हो रहा है, जो सबसे बड़ी भूल है। वेदों में आत्मा-परमात्मा के ज्ञान प्राप्त करने का लिये प्रेरित किया गया है।

बायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम्।
ओ३म क्रतो स्मर, क्लिवे स्मर कृतं स्मर।।
— यजु. 40,15

यजुर्वेद के इस मन्त्र में आत्मा-परमात्मा के स्वरूप का, ओ३म् को याद करने का तथा पल-पल अपने कर्मों के निरीक्षण करने का ज्ञान दिया हुआ है। (**वायुरनिलम् अमृतम्**) यह जीवात्मा '**वायु**' रूप है। जैसे वायु एक स्थान से दूसरे स्थान पर आता जाता रहता है, सर्वत्र व्यापक है पर दिखालाई नहीं देता, अनुभव से जाना जाता है, उसी प्रकार यह जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीरों में आने जाने वाला है। शरीर में सर्वत्र इसका वास है। (**अनिलम्**) यह जीवात्मा अभौतिक है। शरीर में सर्वत्र व्यापक है। (**अमृतम्**) यह जीवात्मा अमर है। विनाशरहित है। ईश्वर के अमृतरूप आनन्द का अनुभव करने वाला है। (**अथेदं भस्मान्तँ शरीरम्**) जीवात्मा जिस शरीर में रहता है, वह शरीर तो भौतिक तत्त्वों से बना है जिसमें पृथिवी का भाग, जल की मात्रा, वायु का समावेश, आकाश का भाग और अग्नि तत्त्व विद्यमान रहते हैं। किन्तु इस भौतिक शरीर से जब यह चेतन जीवात्मा निकल जाता है, तब यह शरीर जड़ बन जाता है, 'मृत' हो जाता है। कुछ समय के बाद इससे दुर्गन्ध भी आने लगती है। इसके बाद इस शरीर की सद्गति के लिये विधि पूर्वक सुन्दर, सुगन्धित हवन-सामग्री, घृत, कपूर, समिधाओं के साथ पवित्र वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए अग्नि में इसे भस्म कर देना चाहिए।

वेद में मृत शरीर की सद्गति कैसे मानी गई है?

हमारे मन में एक प्रश्न पैदा होता है कि जब शरीर से चेतन तत्त्व जीवात्मा निकल जाता है तब हमें मृत शरीर की सद्गति के लिये क्या करना चाहिये? संसार में कई लोग मृत शरीर को ज़मीन के अंदर गाढ़ देते हैं। कई लोग पहाड़ों में ऊँचे टीलों पर रख देते हैं। कई लोग नदियों में मृत शरीर को बहा देते हैं। ये सभी विधियाँ अवैदिक मानी गईं हैं, शास्त्रों और वेदों की मर्यादा के विरूद्ध हैं (**भस्मान्तम् शरीरम्**) इस मृत शरीर का भी विधि पूर्वक वैदिक रीति से अन्तिम संस्कार करना चाहिए। 'अग्नि' में दाह करना सबसे उत्तम रीति है। वैदिक विधि पवित्र है।

(**ओ३म् क्रतो स्मर**) सुख के अवसरों पर, और दुःख की घड़ी में भी ईश्वर को याद करना चाहिए। परमेश्वर के सर्वोत्तम नाम, सर्वरक्षक परमेश्वर 'ओ३म्' को हृदय से याद करना चाहिये।

ईश्वर किसका वरण करता है?

कठोपनिषद् में सुन्दर वर्णन किया गया है कि परमेश्वर किसको अपना आशीर्वाद देता है?

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।
—कठोपनिषद् 2-24

जो व्यक्ति अपनी चार कमजोरियों को दूर कर लेता है ईश्वर उसका वरण कर लेता है-

1. जो मनुष्य अपने चरित्र को, आचरण को, व्यवहार को सुन्दर बना लेता है। पाप रूप कर्मों से, चरित्रहीनता, दुराचरण से अपने को बचा लेता है।

2. जो अपनी शान्ति को बनाए रखता है। अपने मन को शान्त-भाव से रखता है। अशान्ति से, तनाव से, असन्तोष से अपना बचाव रखता है।

3. जो कभी एक जगह बैठकर ईश्वर में ध्यान नहीं लगाता, उसे ईश्वर कैसे अपनाएगा? एकाग्र होकर, शान्त-भाव से शुद्ध-पवित्र आसन पर बैठकर, ईश्वर में लीन होना, समर्पण-भावना से, समाधिस्थ होने में सब प्रकार का कल्याण ही कल्याण है।

4. जिसके मन में बैचेनी नहीं है। जो शान्त चित्त वाला है। स्थिर चित्त वाला है।

अथवा जिसने श्रवण, मनन और चिन्तन द्वारा आत्मा-परमात्मा का विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया है वही उस प्रज्ञान के द्वारा परमात्मा के आशीर्वाद को प्राप्त कर लेता है।

क्लिवे स्मर — इस कर्मशील प्राणी को जीवन में आए हुए दुःखों को, भोगे गए कष्टों को भी याद रखना चाहिये। भविष्य में दुःखों से कैसे बचा जाए इसका उपाय भी करना चाहिए।

(**कृतं स्मर**) अपने पिछले किए गए कर्मों को, पापों को भी याद रखना चाहिए। भविष्य उज्ज्वल हो, जीवन में शुभ कर्म हों, ऐसा प्रयास करना चाहिए।

किसी कवि ने क्या सुन्दर प्रेरणा दी है?

दो बातन को याद कर जो चाहे कल्याण।
नारायण इक मौत को दूजे श्री भगवान।।

उपनिषदों द्वारा आत्मा-परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त करने की शिक्षा-

छान्दोग्योपनिषद् में **महर्षि नारद मुनि** ब्रह्मज्ञान सीखने के लिए **महर्षि सनत्कुमार** के पास जाते हैं। नारद जी कहते हैं- **"सोऽहं भगवो मन्त्र विदेवास्मि नात्मवित्"** छा. उ. 7-26-2

हे महाराज! मैने चारों वेदों को, शास्त्रों को तो पढ़ा है लेकिन मुझे आत्मज्ञान नहीं है, तो मुझे आत्मज्ञान दीजिए और दुःखों से पार कर दीजिए। महर्षि ने नारदजी को ब्रह्मज्ञान प्रदान कर उनकी जिज्ञासा को शान्त किया।

कठोपनिषद् में **नचिकेता** ने **यमाचार्य** से ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। यमाचार्य ने नचिकेता को बहुत से प्रलोभन दिए, लेकिन नेचिकेता ने आत्मा परमात्मा का ज्ञान लेकर ही लक्ष्य प्राप्त किया।

बालक मूलशंकर ने भी प्रभु-प्रेम के लिए अपने हृदय को व्याकुल बनाया था। वह योगियों की खोज में निकल पड़ा। प्रत्येक योगी से एक ही आशा रखी। मुझे उस ईश्वर के दर्शन करा दो। योगियों ने कहा- तू अभी बच्चा है। उस प्रभु के दर्शन के लिए ये रेशमी वस्त्र उतार दे। आभूषण फैंक दे। तपस्वी बन जा। मूलशकर ने उनके बताए रास्ते पर चलना शुरू दिया। कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। संन्यास-दीक्षा लेकर '**दयानन्द**' नाम पाया। उसे **प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द जी** ने आत्मदर्शन कराया। ईश्वर के साक्षात्कार का मार्ग दिखाया।

एक कथा आती है, एक बार **शुकदेव मुनि योगीराज जनक** के पास अध्यात्म विद्या सीखने के लिए गए थे। शुकदेव जी की परीक्षा ली गई। एक तेल भरा कटोरा देकर कहा गया। बाजार से गुज़रना है। तेल न गिरे यह ध्यान रखना है। बाजार में अनेक प्रकार के खेल तमाशे हो रहे थे लेकिन शुकदेव जी ने अपना एकाग्र मन से ध्यान रखा, तेल न गिरने दिया। शुकदेव जी ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया।

आत्म बोध प्राप्त हो जाने पर क्या लाभ होता है?

आज हम आत्मा-परमात्मा को पुस्तकों, उपदेशों और मन्दिरों से जान रहे हैं अपने अनुभव से बोध नहीं कर पा रहे हैं। हमारा शरीर ईश्वर का असली मन्दिर है। इसी मन्दिर में प्रभु के दर्शन होंगे। परमात्मा के दर्शन के लिए इन्द्रियों, हृदय, मन, बुद्धि, आत्मा आदि की पवित्रता एवं धार्मिकता अति आवश्यक है। योगसाधना के द्वारा आत्मा उस परम प्रभु के प्रकाश एवं आनन्द का अनुभव करती है। आत्मबोध हो जाने पर मनुष्य को जो लाभ होता है उसका वर्णन मुण्डकोपनिषद् में किया गया है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। -मुण्डकोपनिषद्

अर्थात् (**तस्मिन् दृष्टे परावरे**) जब यह जीवात्मा उस परम ब्रह्म परमात्मा के दर्शन कर लेता है तब उस प्रभु की कृपा हो जाती है। उस स्थिति के आने पर (**भिद्यते हृदय ग्रन्थि**) सब प्रकार की ग्रन्थियाँ, परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। अज्ञान दूर हो जाता है।

(**छिद्यन्ते सर्वसंशयाः**) सब संशय समाप्त हो जाते हैं। जब यह जीवात्मा अपने स्वरूप में अवस्थित होकर समाधि की अवस्था में सत्यज्ञान युक्त अनन्त परमेश्वर के दर्शन करता है। (**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि**) जैसे-जैसे यह "भक्त-जीवात्मा" बाहर की दुनिया से सिमटकर अन्तःकरण में झाँकता है, ईश्वर का अनुभव कर लेता है वैसे-वैसे उसके जन्म-जन्म के बुरे कर्मों का अन्त होता जाता है। उसको जीवन में परमात्मा के अनुभव से सच्चा सुख, शान्ति एवं आनन्द का आभास होने लगता है। अतः जीवन का असली उद्धार आत्मा-परमात्मा के ज्ञान प्राप्त करने से ही सम्भव है। सन्त कवियों का भी ऐसा ही अनुभव है-

"सुमिरन विनु गोते खाओगे।
क्या लेकर के आए जगत् में, क्या लेकर के जाओगे।
मुट्ठी बाँधे आए जगत् में, हाथ पसारे जाओगे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! भजन विना पछताओगे।।"

म. न. 44, फेस-2, बी ब्लॉक
विकासनगर, नई दिल्ली-59
मो. 9250906201

सत्याग्रह की वैदिक समीक्षा

● आचार्य आर्य नरेश

महर्षि याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण व्याख्या ग्रन्थ में लिखते हैं कि किसी भी राष्ट्र का राजा अंकुश रहित,स्वतन्त्र न रहना चाहिए। राजाधिकारी सभा व प्रजा के अधीन हो एवं सभा व प्रजा राजा (राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री) के अधीन हों। ऐसा न होने से स्वच्छन्द राजा प्रजा का ठीक वैसे ही विनाश करता है जैसे आज भारत का हो रहा है। जब राज सभा के अध्यक्ष को रामलीला सभा में राष्ट्र के अनेक प्रबुद्ध संन्यासियों धर्माचार्यों व देश भक्त राजनेताओं द्वारा कहा गया कि देश की जनता को चूस व उसे दीन–हीन–गरीब बनाकर विदेशी बैंकों में रखा गया धन विधेयक पारित करके राष्ट्र की सम्पदा घोषित किया जाए एवं धन लूटकर ले जाने वालों को देशद्रोही घोषित कर के फांसी जैसा कठोरतम दण्ड दिया जाए तो इससे कांग्रेस राज–अध्यक्ष के कान पर जूँ तक न रेंगी। लगभग एक लाख लोगों की सभा को भ्रष्ट राजाध्यक्ष और अधिकारियों ने व्यर्थ समझ कर अनसुना कर दिया। छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास 'प्रवचन–पारिजात' में कहते हैं कि दुष्ट राजा सात्विकता से नहीं तामसिकता से मानता है।

महर्षि देव दयानन्द राजधर्म (विश्व पर चक्रवर्ती राज करने वाली सर्वहितकारी व सर्वोन्नतिकारी) राजनीति का प्रकाश करते हुए अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि राजा व राजाध्यक्ष प्रजा के अधीन हों। उन्हें भी गलती, राष्ट्र हत्या करने पर दण्डित किया जाए। विश्व के मानव समाज के प्रथम संविधान में महर्षिमनु का वचन है– **"वाग्दण्डं प्रथम कुर्याद्.... वधदण्डमतः परम्"**, प्रजा व राजधिकारी कोई भी हो उसे सचेत करने हेतु प्रथम – निन्दा दण्ड, द्वितीय धिक् दण्ड, तृतीय धनदण्ड और इतने पर भी पाप और राष्ट्र द्रोह न छोड़े तो मृत्यु दण्ड देना चाहिए। धन के दण्ड में साधारण प्रजा की अपेक्षा राजा को हजार गुणा अधिक दण्ड दिया जाए। यदि राजपुरुषों को अधिक दण्ड न हो तो वे अन्याय और अत्याचार से प्रजा पुरुषों का नाश कर देवें। (जैसे कि आजकल हो रहा है) **दण्ड शासति प्रजा सर्वा, दण्डं धर्म विदुर्बुधा।।** दण्ड ही धर्म है, वही सब प्रजाओं का ठीक शासन करता है। दण्ड ही राजा है अतः दुष्ट राजाध्यक्ष आदि को सभा दण्डित करे एवं यदि सभा भी मर चुकी हो तो प्रजा उसे एक जुट होकर दण्डित करे न कि भूखी मर कर स्वयं बलहीन होकर दुष्ट के बल को बढ़ाये। ध्यान रहे कि गोरक्षा सत्याग्रह पर भी साधुओं को इन्दिरा ने गोलियां मरवाई थीं।

भारत के गत दो अरब वर्ष के वैदिक राज के इतिहास में दुष्टों व झूठों को सुधारने हेतु प्रथम वाणी द्वारा, शास्त्रार्थ द्वारा **'सत्य'** को स्वीकार करने का **'आग्रह'** किया जाता था और उसके न मानने पर अपराध के अनुसार, राजमुक्त, देश निकाला या मृत्यु दण्ड दिया जाता था। न्याय के समक्ष तो हमारा संविधान भी सब को बिना पक्षपात के बराबर समझता है। महर्षि ब्रह्मा, महातपस्वी सम्राट् श्री शिव, महर्षि मनु एवं प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् शशबिन्द मानधाता से लेकर युधिष्ठिर आदि पर्यन्त कहीं भी चोर, रिश्वत खोर और देश द्रोही मन्त्री, प्रधानमंत्री या राजा राष्ट्रपति अथवा राजाध्यक्ष को भूख हड़ताल द्वारा सुधारने की चर्चा नहीं है। मनुस्मृति, शुक्रनीति, विदुरनीति, कृष्णनीति तथा चाणक्यनीति में कहीं दुष्टों को दुष्टता से रोकने हेतु प्रजा द्वारा भूखे मरने का विधान नहीं है। सर्वप्रथम उसे बातचीत द्वारा न माने तो शास्त्रार्थ द्वारा परन्तु फिर भी न माने तो नन्द की तरह मृत्युदण्ड का ही विधान है। योगेश्वर कृष्ण के बार–बार समझाने पर दुर्योधन जब नहीं माना एवं महापण्डित चाणक्य द्वारा समझाने पर जब प्रजा के धन व धर्म का हरण करने वाला 'नन्द' न माना तो उन्हें मृत्यु दण्ड ही दिया गया। न तो राम ने रावण को मनाने हेतु, नहीं कृष्ण ने कंस, दुर्योधन, जरासंध शिशुपाल को मनाने हेतु एवं न ही पं. चाणक्य ने नन्द को समझाने हेतु भूख हड़ताल की थी। इसलिए लोक में प्रसिद्ध है कि लातों के भूत बातों व भूखे मरने वालों से नहीं माने। अंग्रेजों के भारत न छोड़ने पर महर्षि दयानन्द, श्याम जी कृष्ण वर्मा या ला. लाजपत राय ने कभी भूख हड़ताल न की एवं न ही करने का विधान किया अपितु देवदयानन्द के पटु शिष्य श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा ने दल्ली में लार्ड हार्डिंग पर बम्ब फैंकने का समर्थन किया। गोरे भी गांधी के चरखे से नहीं देव दयानन्द के भगत सिंह, बिस्मल, चन्द्रशेखर जैसे शिष्यों द्वारा गोली–गोले मारने पर ही गए। गोरी सरकार का खूफिया अधिकारी मिस्टर लैण्ड लिखता है कि भारत में अंग्रेजी सरकार को सब से बड़ा खतरा आर्य समाज के क्रान्तिवीरों से है। वैसे भी गांधी जी, अन्ना जी, विनोबा जी, मेधा पाटेकर, चानु शर्मिला आदि को सरकार से कोई बड़ी वस्तु नहीं मिली, मिला तो देशों के काले अंग्रेजों को सत्तापरिवर्तन, वही हजारों अंग्रेजी कानून, देश का बटवारा या उसमें गोहत्या, आतंकवाद, कश्मीर समस्या व भ्रष्टाचार।।

वैदिक गवेषक.
उद्गीथ साधना स्थली,
हिमाचल–173101

ध्यानयोग–में मूर्ति पूजा की पुष्टि नहीं

● सूरजमल त्यागी

साकारमूर्ति पूजक, महर्षि पंतजलि के योगदर्शन और उसके महर्षि वेदव्यास के भाष्य, योगसूत्र विषयक "ध्यानयोग में, मूर्ति पूजा की भ्रामक–निराधार पुष्टि का प्रयास करते हैं। जबकि ध्यानयोग में साकार जड़ मूर्तिपूजा का संकेत तक सिद्ध नहीं होता। मूर्तिपूजा समर्थकों का कथन है कि मूर्तिपूजा में साकार जड़वस्तु (मूर्ति) में ईश्वर की प्राण–प्रतिष्ठा मानकर, ईश्वर की पूजा पाठ करके, ईश्वर का ध्यान करते हैं। इसी प्रकार योगदर्शन के ध्यान विषय में भी साकार जड़ वस्तु की तरह, ललाट–भ्रकुटि–हृदय–नाभि आदि स्थानों पर ध्यान लगाना, टिकाना, केन्द्रित कर एकाग्र करने से मूर्ति पूजा की पुष्टि होती है।

इस भ्रम जाल में फँसकर सामान्य व्यक्ति ध्यान योग में साकार वस्तु पर ध्यान लगाना लिखा होने से, भ्रमित होकर, मिथ्या जाल में फँस जाता है। जबकि मूर्ति पूजक का यह तर्क निराधार है। यह शास्त्रोक्त एवं बुद्धिपूर्वक नहीं है। योगदर्शन के किसी भी भाष्य अथवा सूत्र से प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष मूर्ति पूजा का संकेत भी नहीं है।

"ध्यान और जड़साकार मूर्तिपूजा दोनों एक दूसरे से भिन्न कर्म हैं। ध्यान और तथाकथित मूर्तिपूजा पर्यायवाची भी नहीं है। मन की वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर एक स्थान पर मन को रोककर परोक्ष ईश्वर का प्रत्यक्ष चिन्तन करने का नाम ध्यान है। ईश्वर अन्तर्यामी के स्वरूप में मग्न हो जाने का नाम ध्यान है। ईश्वर के स्वरूप को छोड़कर, मन की किसी वृत्ति को मन में नहीं आने देना चाहिए। कुछ अल्पज्ञ व्यक्ति यह मानते हैं कि जब तक कोई आकार–प्रकार–रूप–साकार आकृति, व्यक्ति, प्रकृति आदि न हो, तब तक ध्यान नहीं हो सकता। यह मान्यता निराधार और असत्य है। क्योंकि जीव और सुख–दुःख का भी कोई आकार नहीं, इनके कोई हाथ–पैर नहीं हैं। शब्द का ध्यान किया जाता है। जिस वस्तु में जो गुण होते हैं उन्हीं के माध्यम से उस वस्तु का ध्यान किया जाता है। जब ईश्वर के हाथ–पैर आदि हैं ही नहीं तो ईश्वर के हाथ–पैर आकृति की मान्यता कितनी मूर्खता, अज्ञान और विपर्यय–ज्ञान है। सांख्य दर्शन में कपिल ऋषि कहते हैं कि **"ध्याननिर्विषयं मनः"**

ध्यान के माध्यम से अपने चपल–चंचल मन की विषय वासनाओं को रोकना है। ध्यान से ईश्वरीय अनुकम्पा में मग्न होकर, मन को खूँटे से बाँधना है। एक स्थान पर टिकाना–रोकना एकाग्र करना है। इसकी चंचलता पर अंकुश

शेष पृष्ठ 11 पर

"ध्यान और जड़साकार मूर्तिपूजा दोनों एक दूसरे से भिन्न कर्म हैं। ध्यान और तथाकथित मूर्तिपूजा पर्यायवाची भी नहीं है। मन की वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर एक स्थान पर मन को रोककर परोक्ष ईश्वर का प्रत्यक्ष चिन्तन करने का नाम ध्यान है। ईश्वर अन्तर्यामी के स्वरूप में मग्न हो जाने का नाम ध्यान है। ईश्वर के स्वरूप को छोड़कर, मन की किसी वृत्ति को मन में नहीं आने देना चाहिए। कुछ अल्पज्ञ व्यक्ति यह मानते हैं कि जब तक कोई आकार–प्रकार–रूप–साकार आकृति, व्यक्ति, प्रकृति आदि न हो, तब तक ध्यान नहीं हो सकता। यह मान्यता निराधार और असत्य है। क्योंकि जीव और सुख–दुःख का भी कोई आकार नहीं, इनके कोई हाथ–पैर नहीं हैं। शब्द का ध्यान किया जाता है। जिस वस्तु में जो गुण होते हैं उन्हीं के माध्यम से उस वस्तु का ध्यान किया जाता है। जब ईश्वर के हाथ–पैर आदि हैं ही नहीं तो ईश्वर के हाथ–पैर आकृति की मान्यता कितनी मूर्खता, अज्ञान और विपर्यय–ज्ञान है।

www.thearyasamaj.org

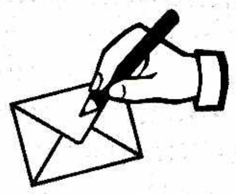

पत्र/कविता

मनसः कामना

मनसः काममाकूतिं, वाचः सत्यमशीय।
पशूनां रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।।
(यजुर्वेद 39.4.)

सद्यत्नों से सद्लक्ष्यों को प्राप्त करूँ मैं भगवन!
करूँ सार्थ पुरूषार्थ, बनाऊं श्रेष्ठ–समुन्नत जीवन।।

विविध शक्तियों का निवास हो पूर्णतया अन्तस् में ।
'मनसः कामं दृढेच्छा शक्ति प्रबल होय मम मन में।।

जिससे दीन दुखी जन की सेवा कर दुःख मिटाऊँ।
'सर्वे सन्तु निरामया' सेवा का लक्ष्य बनाऊँ।।

आकूति–संकल्प शक्ति हो मन में नाथ हमारे।
जिससे सद्व्रतच्युत न होऊं , पूर्ण करूँ व्रत सारे।।

बाधाऐं जो पथ में आऐं, उनसे नहि घबराऊँ।
उन्हें चुनौती दूँ, टकराऊँ, दूर करूँ, बढ़जाऊँ।।

'वाचा सत्य अशीय'' सत्यमयि हो वाणी, प्रिय हितकर।
मनसा, वाचा और कर्मणा, सत्यमय हो जीवन वर।।

सत्य प्रतिष्ठा से अन्तस् में, सत्यसिद्धि हो जाता।
दिव्य शक्ति आती, अमोघ हर वचनामृत हो जाता।।

पशूनामरूपम्–गवादि पशुओं से दुग्ध, घृत, पाऊँ।
उनके सेवन से अपना तन –मनस् स्वस्थ रख पाऊं।।

सत्व युक्त '' **अन्नस्य रसः**– अन्नों का रस सेवन कर।
शुद्ध, सात्विक अरु परमार्थी हो मम जीवन प्रभुवर!!

सत्यकर्मों को करूँ ''**यशश्री**–कीर्ति, सुशोभा मुझमें।
'**श्रयतां**''– स्थित हो, अरु फैले दिगदिगन्त–अग–जग में।।

इन इच्छाओं अरु आदर्शों की सुपूर्ति हित भगवन!
'**स्वाहा**–'' सद्यत्नों की आहुति करता रहूँ समर्पण।।

दयाशंकर गोयल
1554 डी. सुदामा नगर इंदौर
पिन–452009 (म.प्र.)

आर्य समाज के विस्तार का उपाय नेतृत्व संगठनों का एकीकरण

वर्तमान में आर्य समाजों में सर्वत्र शिथिलता का कारण आपसी मतभेद एक कुशल नेतृत्व का अभाव व सार्वदेशिक सभा से लेकर नीचे तक दो–दो, तीन–तीन सभाएं होने से संसार में आर्य जगत् का ग्राफ गिरता जा रहा है। जो प्रत्येक आर्य के लिये चिन्ता का विषय है।

आर्य समाज की आवश्यकता आज पहले से अधिक है। आज सारे विश्व को आर्य सिद्धान्तों की अति आवश्यकता है। आर्य समाज आज दूसरे दौर में पदार्पण कर रहा है। पहले दौर का आन्दोलन बहुत सफल रहा है। किन्तु आज की परिस्थितियां भिन्न हैं। आर्य समाज की अधिकांश मान्यताओं को जनता ने स्वीकार कर लिया है और जो आर्य समाज के सदस्य नहीं भी हैं वह परोक्ष व अपरोक्ष रूप में आर्य समाज के सिद्धान्तों को स्वीकार कर चुके हैं। आर्य समाज को, महर्षि दयानन्द जी की दूर दर्शिता वाले कार्यक्रमों को देश, काल व परिस्थिति के अनुसार वर्तमान में जनता को कौन से मार्ग दर्शन की आवश्यकता है, इसके लिए क्रियात्मक आन्दोलित होना चाहिए।

दुभाग्यवश शिरोमणि सभाओं के नेता व अन्य आर्य, आर्य समाज की शिथितला से आंख मूंद कर बैठे हैं, आर्य समाज लक्ष्यहीन, कुशल सशक्त नेतृत्व के अभाव में बुरी तरह ग्रस्त है और हम अपने–अपने अहंकार के कारण हटधर्मी, पदवाद, अर्थवाद, सम्पतिवाद के झूठे विवादों में फसे हुए हैं। अधिकांश सभाओं के झगड़े घर से निकलकर न्यायालयों में पहुंचकर आर्य समाजों की छवि खराब व धन की बरबादी कर रहे हैं और जहाँ न्यायालय में वाद नहीं है वहाँ पुरूषार्थी कार्यकर्ताओं का अपमान व टांग खींचने तथा दोषारोपण का कार्य हो रहा है।

आर्य समाज का मंच सत्य का मंच है और महर्षि जी ने सत्य के प्रतिपादन के लिए अपना बलिदान तक दे डाला था। न जाने हमें क्या हो गया है? हम सभी सत्य के पक्षधार होकर निष्पक्ष क्यों नहीं हो रहे हैं? आज आवश्यकता है हमें अनुचित अभिमान से बचने की। आर्य जगत् के अन्दर गुणवानो की हमें कदर करनी चाहिए। अगर यह बात हमारे हृदय में बैठ जाए तो हम एक दूसरे के गुणों का सम्मान करना सीख सकते हैं। यदि आज आर्य जगत् असत्य का त्याग व सत्य का पक्षधार बन जाए तो सारे संसार को हिलाने की शक्ति आर्य समाज में आ सकती है।

आर्यो संगठन में ही शक्ति है और विघटन में मृत्यु है। हमें अपनी आत्मा को ज्योतिर्मय बनाना है। प्राणों को दीप्त करना है। हटधर्मी व मिथ्या अभिमान को जलाकर नष्ट करना है। हमारा जीवन अल्प समय का है। हम आर्य समाज का उज्ज्वल इतिहास बनानें में आगे आयें। मौत को भी गले लगाकर हमें जहरीले महाविनाशक विषधार विचारों को समाप्त करना होगा।

सभाओं से प्रार्थना,

अति आवश्यक है तीनों सार्वदेशिक सभाएं आपसी विवाद भुलाकर हटधर्मी छोड़कर उच्च कोटि के निस्वार्थ संन्यासियों के समक्ष एक संयुक्त चुनाव करावें और सम्पूर्ण विश्व को सशक्त नेतृत्व प्रदान करें।

सम्पूर्ण भारत की आर्य प्रतिनिधि सभाओं को भी विनम्र भाव रखते हुए व अपनी–अपनी हटधर्मी छोड़कर जहाँ–2 दो–दो सभाएं है। आपसी सहयोग करके सब झगड़े समाप्त करके सयुंक्त चुनाव कराने चहिएँ। प्रान्त की एक सभा हो।

मेरा सम्पूर्ण आर्य जगत के नेतृत्व से निवेदन है कि आर्य समाज के संगठनों का एकीकरण करने में आगे आकर अपनी भूमिका निभाए। सारा संसार आज भौतिक युग व वैज्ञानिक युग में भी अन्ध विश्वासों से गले तक डूबा हुआ है। संसार को सन्मार्ग केवल आर्य समाज ही दिखा सकता है। क्योंकि आर्य समाज सत्य का पक्षधर है और वह भी ऋत सत्य का। आइए आर्य समाज का भविष्य बनाने में पहले करने की कृपा करें तथा इस पत्र की अपनी प्रतिक्रिया भी देवें।

पं0 उम्मेद सिंह विशारद,
वैदिक प्रचारक सम्पूर्ण उत्तराखण्ड
गढ़निवास मोहकपुर (देहरादून)
मो0–9411512019

****

www.thearyasamaj.org

आर्यसमाज सेक्टर-15 गुडगाँव में हुआ श्रावणी का उत्सव

आर्यसमाज पटेल नगर सेक्टर–15 पार्ट–2 के आयोजन में श्रावणी एवं श्रीकृष्ण जन्माष्टमी बड़ी धूम धाम से मनाया गया, जिसमें लोगों को आमंत्रित करने के लिए सुबह प्रभातफेरी निकाली गई। आर्य समाज के पधान पदम् चंद आर्य, इस कायक्रम की विस्तृत जानकारी देते हुए आज पत्रकारों को बताया कि भरतपुर (राज) के आचार्य देशराज शास्त्री, गुरूकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार के डा. योगेश तथा बरेली यू.पी. के भजनोपदेश विमल देव के सानिध्य में ये कायक्रम चलाए गए। इस कार्यक्रम में यज्ञ, भजन, प्रवचन हुये, आर्यवीर दल उपसंचालक शिवदत्त आर्य ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

उपमंत्री निर्मला आर्या आडिटर जयराम वर्मा ने बताया कि समापन समारोह 28 अगस्त को से. 15 भाग दो में हुआ, जिसकी अध्यक्षता प्रमुख दानी और पूर्व पधान रामदास सेवक द्वारा की गई, मुख्य अतिथि पूर्व मंत्री धर्मवीर गाबा रहे।

आर्य समाज भोजपुर खेड़ी का शताब्दी समारोह

संयोजक, श्री आनप्द प्रकाश आर्य से प्राप्त विज्ञप्ति के अनुसार आर्य भोजपुर खेड़ी का शताब्दी वर्ष 13 जून 2013 से 12 जून 2014 तक मनाया गया है। आर्य उप प्रतिनिधि सभा जनपद बिजनौर के तत्वावधान में शताब्दी महोत्सव 18 से 21 अक्टूबर 2013 ई. शनिवार से सोमवार तक मनाया जायेगा। इस अवसर पर आर्य समाज भोजपुर खेड़ी शताब्दी यात्रा स्मारिका का प्रकाशन हो रहा है तथा 18 अक्टूबर को प्रातः विशाल शोभा यात्रा आर्य समाज भवन से प्रारम्भ होकर अनेक ग्रामों में भ्रमण करने के बाद सायं आर्य समाज में ही समाप्त होगी।

☞ पृष्ठ 7 का शेष

हम कहाँ जा रहे हैं

उसे पढ़कर मुझे रामायण कालीन उस घटना का स्मरण हो आया जब रावण के दरबार में अंगद ने पैर जमा कर कहा था:–

"जो मम चरण सकहिं सठ टारी।
फिरहिं राम सीता मैं हारी।।"

यदि रावण का कोई योद्धा अंगद का पैर डिगा देता, तो क्या सचमुच राम सीता को बिना लिए ही वापिस लौट जाते? लगभग ऐसा ही आपका यह कथन कि यदि (विरोधी पण्डित गण) यह सिद्ध करे दें– तो आर्य समाज यह सिद्धांत स्वीकार कर लेगा– अर्थात् अश्व की आहुति दी जा सकती है।

वरेण्य पण्डित जी ने बड़े ही आत्मविश्वास और नम्रता के साथ कहा– "सहदेव जी, गत 20 वर्षों से इसी ऊहापोह में जीवन के क्षण बिताए हैं। ऋषि ने यही आत्मविश्वास लेकर धर्म नगरी को चुनौती दी थी, ऋषि तो अकेला था– केवल ईश्वर और सत्य ही उनके सहायक थे और अब तो हम हज़ारों की संख्या में उस सिद्धांत के साक्षी हैं। इसके बाद मेरे पास कुछ कहने को नहीं था। मैंने इस घटना का आचार्य जी की उपस्थिति में ही कई सम्मेलनों में ज़िक्र किया परन्तु आचार्य श्री ने हर बार यही कहा कि सत्यपथ पर आरूढ़ रहकर क्या भय क्या शंका? पर अब हम कहाँ से कहाँ चले गये?

वह समय था जब आर्य समाज के नेता सिद्धान्तों से लबरेज रहकर किसी भी सैद्धान्तिक चुनौती का खम ठोकर सामना करने के लिए कटिबद्ध रहते थे। ..... पर अब कौन कहे? किसे कहे? और क्या कहे? अब तो समाज मंदिरों की चार दीवारी में बैठकर यज्ञ करके साप्ताहिक सत्संग की इति श्री कर ली जाती है– काश वे दिन फिर लौट सकें अब तो यह स्थिति है:

"कोई मर्ज हो तो दवा करे, कोई बला हो तो दुआ करे।
जब दवा दुआ का असर न हो तो बताईये कोई क्या करे?

आखिर – हम कहाँ जा रहे हैं?"

–24 बिशन सरूप कॉलोनी
पानीपत (हरियाणा)
फोन नं. 0180–2643700

☞ पृष्ठ 9 का शेष

ध्यानयोग–में मूर्ति पूजा...

लगाना है। मन को उसके विषय शब्द–रूप–रस–स्पर्श–गंध विमुक्त और विरक्त करने का एकमात्र साधन योग ही है। जबकि मूर्ति में शब्द, रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि नितान्त व्याप्त रहते हैं। जो ध्यानयोग के विरूद्ध है। शेर को पिंजरे में, हाथी को अंकुश से, बच्चों को स्कूल में बैठाकर, सैनिकों को अनुशासन से और मन को ध्यान के खूँटे से बाँधकर, टिकाकर उसकी वृत्तियों पर नियन्त्रण किया जाता है।

ध्यान और तथाकथित साकार जडमूर्ति पूजा पद्धति को लेकर दो बातों पर चिन्तन करना अनिवार्य है। पहली बात है "यथार्थ ज्ञान" जो जैसा है, उसको वैसा ही जानना–मानना और करना होता है। दूसरी बात जैसी अपनी मान्यता, श्रद्धा–आस्था–विश्वास होता है, उसी के आधार पर उसकी मान्यता होती है। अर्थात् अन्य में अन्य का भाव मान लेना। गाय को घोड़ा और घोड़े को गाय, जड़ को चेतन और चेतन को जड़ मान लेना उसकी अपनी निजी मान्यता है। उसकी ऐसी मान्यता, भावना, विश्वास श्रद्धा का दूसरों पर कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी की मान्यता को, कोई रोक नहीं सकता। जब तक उसकी मान्यता दूसरों के लिये कोई बाधा उत्पन्न न करे। किसी की गलत भावना, श्रद्धा मान्यता से वस्तु–पदार्थ का स्वरूप नहीं बदल जाता।

वेद और वैदिक साहित्य में मूर्ति का अर्थ--मूर्तिवत्, कर्कष, कठोर, क्रूर, दृढ और निष्ठुर है। ध्यान योग और मूर्ति पूजा पद्धति में विरोध है। इस भिन्नता को एक अल्पज्ञ भी जानता है। मूर्ति पूजा में प्रचलित देवताओं का आवाहृन और विसर्जन, भोग चढ़ाना, भोग लगाना, दीप सुगंध, आरती करना, नाचना, गाना, घंटे घड़ियाल बजाना, जैसी क्रियाओं का ध्यानयोग में निषेध और वर्जन है। ध्यान रखो, चल–गति से मन नहीं टिकता। जड़पूजा में देवता कहाँ से आए थे! कहाँ चले गए!! ईश्वर कहीं आता जाता नहीं!!! चाँदी की मूर्तियाँ, हीरे–मोती–जवाहरात जड़ित छत्र, मुकुट, आभूषण और बर्तन आदि, जिनकी चौकीदारी ओर तालाबन्दी रहती है। जबकि ध्यान योग में उपासना किसी व्यक्ति–पदार्थ–प्रकृति की नहीं, केवल ईश्वर की ही की जाती है।

जड़ साकार मूर्ति पूजा में ईश्वर के स्थान पर किसी स्त्री–पुरुष आदि की मूर्ति लगाई जाती है। क्या ईश्वर के स्त्री–पुरुष का कोई लिंग भेद है? पाषाण–सोने –चाँदी, हीर–मोती, आभूषणों, अमूल्य वस्त्रों से श्रृंगारित मूर्ति को देखकर अनेक विचार, भावनाएँ, चंचल मन में उत्पन्न होती हैं। परन्तु इन भावनाओं से ईश्वर का भाव नहीं होता। क्योंकि ये यथार्थ में शाश्वत सत्य नहीं हैं। यथार्थ न होने से विचार की क्रिया शक्ति, अनुसरण शक्ति भी घट जाती है। इससे तथाकथित ईश्वर भक्ति भी निष्फल रह जाती है।

अतः जड़ मूर्तिपूजा से द्रष्टा, दृश्य और ध्येय, परस्पर संयुक्त होकर ध्यान योग से वंचित रहते हैं। **"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"** निराकार को साकार, जड़ को चेतन, जड़ मूर्ति में ईश्वर की मान्यता, भावना, आस्था, विश्वास अन्य में अन्य का भाव, विपर्ययवृत्ति और मिथ्या ज्ञान है। **"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** वेद। जड़ स्थूल प्रतिमा, अपनी सृष्टि के लिए मूर्तिकार पर आश्रित है। मनु महाराज ने धर्म का श्रुति सम्मत होना आवश्यक कहा है।

जडौदा हाउस" कोटा (राज.)

www.thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 25-26 /09/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

पट्टी (तरनतारन) नगर की डी.ए.वी. संस्थाओं में वृक्षारोपण कार्यक्रम

डी.ए.वी.सीनियर सैकण्डरी स्कूल, पट्टी (जिला तरनतारन–पंजाब) में प्रिंसीपल श्री राम लाल की अध्यक्षता में वृक्षारोपण समारोह बड़े उत्साहपूर्वक मनाया गया जिसमें स्कूल के समस्त अध्यापक वर्ग और विद्यार्थियों ने सक्रिय भाग लिया। श्री जे.के.लूथरा, अध्यक्ष स्थानीय स्कूल प्रबन्ध समिति को मुख्य अतिथि के रूप में सादर निमन्त्रित किया गया। उनके साथ प्रिंसीपल संजीव कोछड़ और श्री भारत भूषण भी पधारे। सभी ने स्कूल प्रांगण में अपने कर–कमलों से पौधे लगाए। इस अवसर पर स्कूल के समस्त अध्यापक वर्ग के साथ–साथ प्राइमरी विभाग की संचालिका श्रीमति राजबीर कौर तथा पूर्व अध्यापक श्री कश्मीरी लाल भी उपस्थित थे। अध्यक्ष श्री ज.के.लूथरा जी ने विद्यार्थियों को वृक्षारोपण के महत्व पर संबोधित किया कार्यक्रम के अन्त में सभी ने ऋषि लंगर का आनन्द लिया।

गंडूमल आर्य गर्ल्ज़ सीनियर सैकण्डरी स्कूल, पट्‌टी (जिला तरनतारन–पंजाब) में भी वृक्षारोपण समारोह स्कूल अध्यक्ष श्री जे.के.लूथरा तथा स्कूल प्रबन्धक प्रिंसीपल डॉ. के.एन. कौल के द्वारा किया गया। इस अवसर पर स्कूल के समस्त अध्यापक वर्ग के साथ–साथ प्रिंसीपल श्रीमति जसबीर कौर ने इस कार्यक्रम में सक्रिय भूमिका निभायी।

आर्य समाज मॉडल टाउन जालंधर द्वारा दयानंद मॉडल स्कूल में वैदिक संध्या का आयोजन

आर्य समाज मॉडल टाउन जालंधर द्वारा श्रावणी मास के उपलक्ष्य में दयानंद मॉडल स्कूल मॉडल टाउन जालंधर में वेद प्रचार हेतु वैदिक संध्या का आयोजन किया गया।

इस पावन संध्या में नगर के अनेक विशिष्ट आर्य जन उपस्थित हुए ! जिसमें आर्य समाज के प्रधान श्री अरविन्द घई, श्रीमती रश्मि घई, आर. डी. श्रीमती पूर्ण प्रभा शर्मा, जस्टिस शर्मा, प्रिंसिपल राज कुमार सहगल व श्री एस पी. सूद ने मुख्य रूप में उपस्थित होकर वैदिक संध्या का पुण्य अर्जित किया।

समारोह का आरम्भ प्रसिद्ध भजन गायक सरदार सुरेन्द्र सिंह के भजनों द्वारा हुआ! तत्पश्चात प्रसिद्ध वेद ज्ञाता श्री राजू वैज्ञानिक ने वेदामृत की वर्षा द्वारा सबका वेद विषयक ज्ञान बढ़ाया। उन्होंने अपने भाषण द्वारा वेदों के ज्ञान, स्वाध्याय व मनन की आज के युग में सार्थकता को दर्शाते हुए सबको वेदाध्ययन करने के लिए प्रेरित किया।

समारोह का अंत विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री विनोद कुमार द्वारा आए हुए मेहमानों का धन्यवाद किया गया।

सुशान्त लोक गुड़गाँव में स्त्री आर्य समाज की स्थापना

आर्य समाज डी. ब्लॉक, सुशान्त लोक–1, गुडगाँव के तत्त्वावधान एवं श्रीमती गोकुलदीप मेहता (पत्नी स्वर्गीय एड्वोकेट के एल.मेहता, संस्थापक प्रधान, आर्य समाज) के नेतृत्व में स्त्री आर्य समाज का प्रथम यज्ञ (बुधवार) 4.9.13 को उपरोक्त आर्य समाज की यज्ञशाला में विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर श्री शान्ति लाल बजाज जी यज्ञ ब्रह्मा थे एवं डॉ. मैत्रेयी जी का वैदिक उद्‌बोधन हुआ। श्रीमती प्रीति कुलश्रेष्ठ, जो कि कार्यक्रम का संचालन कर रही थीं, ने कहा की स्त्री आर्य समाज की नितान्त आवश्यकता थी। उन्होंने आर्य समाज के पदाधिकारियों के सहयोग की भी सराहना की।

☞ पृष्ठ 1 का शेष

बी.बी.के. डी.ए.वी. ने ...

प्रदान किया गया है जिसके अन्तर्गत महर्षि दयानन्द से संबंधित कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे।

मुख्यातिथि श्री जे.पी.शूर जी ने विद्यार्थियो को आर्य समाज के उत्थान और विकास के लिए तथा बेसहारों का सहारा बनने के लिए प्रोत्साहित किया एवं कॉलेज द्वारा आर्य समाज की उन्नति के लिए किए जा रहे कार्यों की प्रशंसा की। डॉ. लखनपाल जी ने अंगदान के लिए सबको प्रेरित किया।

छात्राओं के द्वारा पथिक जी द्वारा लिखित भजन की प्रस्तुति की गई जिसकी लय में सम्पूर्ण वातावरण मन्त्र–मुग्ध हो गया। श्री सुदर्शन कपूर, अध्यक्ष स्थानीय प्रबन्धकर्तृ समिति, ने उपस्थिति का धन्यवाद किया।

मुद्रक व प्रकाशक – श्री प्रबोध महाजन, सभा मंत्री द्वारा मदन गोयल के प्रबंध में अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय 'आर्य जगत्' आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – श्री पूनम सूरी